Seminar Library
OSMANIA UNIVERSITY

गुरु और शिष्य

लन्दनकी द्वितीय गोलमेज-परिषद्में गांधीजी, उनके बगलमें सर रामस्वामी आयंगर और सर तेजबहादुर सप्रू दिखाई पड़ रहे हैं।

गांधीजी की
यूरोप-यात्रा

(कुमारी म्युरीएल लेस्टर के Entertaining Gandhi के
श्री चन्द्रशङ्कर शुक्ल के गुजराती अनुवाद से अनूदित)

अनुवादक

श्री 'रंजन' शर्मा

*

(श्री प्यारेलालजी की प्रस्तावना के साथ)

*

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद. (दक्षिण).

वोरा ऍंड कंपनी पब्लिशर्स लिमिटेड
३, राउंड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई

अनुक्रमणिका

विषय			पृष्ठ
१ किंग्सली हॉल का निमंत्रण	...	...	१
२ अखबारवालों के करिश्मे	...	...	७
३ गांधीजी और रेडियो	...	...	१६
४ तारों की रोशनी में	...	...	२५
५ कुछ मशहूर मुलाक़ातें	...	...	३०
६ कुछ अच्छे दोस्त	...	...	४०
७ गांधीजी और बच्चे	...	...	४८
८ हमारे भ्रमण	...	...	५५
९ कुछ और भ्रमण	...	...	६२
१० परिषद् की समाप्ति	...	...	७१
११ पेरिस में	...	...	८५
१२ स्विट्ज़रलैण्ड में स्वागत	...	...	९७
१३ इटली में स्वागत	...	...	११६
१४ बनावटी मुलाक़ात	...	...	१२७
परिशिष्ट १	...	...	१३१
परिशिष्ट २	...	...	१४८

प्रस्तावना

"मैं मानता हूँ कि मैं इस बार खाली हाथों लौटा हूँ, लेकिन मुझे इस बात का सन्तोष ही नहीं, गर्व भी है कि जिस झण्डे की इज्ज़त मेरे हाथों में सौंपी गई थी, उस झण्डे को मैंने नीचे न झुकने दिया, और न उसकी इज्ज़त ही कम होने दी। मैंने हमेशा सावधान रहकर, ईश्वर से प्रार्थना की है कि मेरी गफ़लत या दुर्बलता के किसी भी क्षण में मुझसे ऐसा कोई काम न हो जाय, जिससे मेरे देश का गौरव निस्तेज हो और मैं देश-भाइयों द्वारा भेजे गये विश्वास और श्रद्धा के लिए अपात्र ठहरूँ!" लन्दन की गोलमेज़-परिषद से लौटने के बाद, गाँधीजी ने अपनी यात्रा के हाल और परिणाम को इन्हीं चन्द चिरस्मरणीय वाक्यों द्वारा व्यक्त किया था। जब गाँधीजी विलायत में थे, तब वहाँ के एक अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ उनके मित्र होने का दावा करते थे, और अपनी मित्रता को वाणी और व्यवहार से प्रदर्शित करने को बहुत आतुर रहते थे। लेकिन जब गाँधीजी हिन्दुस्तान लौटे तो उन मित्र ने रंज़ीदा होकर कहा कि विलायत में जो लोग राजनीति और अधिकार में नेता गिने जाते थे, उनसे मित्रता का जो सुन्दर मौका गाँधीजी को मिला, उसका उन्होंने सदुपयोग न किया; वे तो सिर्फ पादरियों, सनकी और निम्न लोगों से ही मिल-जुलकर रह गये। इस आलोचना से तो यही सिद्ध होता है कि ये सज्जन शायद गाँधीजी की विलायत-यात्रा के उद्देश्यों और काम करने के ढङ्ग से भी वाक़िफ न थे। अगर गाँधीजी सचमुच ही 'राजनैतिक सौदा' करने विलायत गये होते तो यह बात ठीक मानी जाती; किन्तु उनका ध्येय तो उस वक्त ब्रिटिशों को हिन्दुस्तान की सही हालत समझाना और साथ-ही-साथ ब्रिटिश जनता की सहानुभूति पाना तथा हिन्दुस्तान के प्रति उनके पुराने और दक़ियानूसी विचारों को पलटना भी था; क्योंकि इससे वे लोग हिन्दुस्तान के ऊपर किये गये अत्याचारों का निवारण करके भारत और इंग्लैण्ड के सम्बन्ध के इतिहास में एक नया प्रकरण जोड़ने का प्रयत्न करते। गाँधीजी को अहिंसा के पुजारी के रूप में, पूर्ण अहिंसात्मक ढङ्ग से काम करना था, और वे गये भी थे हिन्दुस्तान

के अहिंसात्मक संग्राम के प्रतिनिधि बनकर ही ! यदि हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड का सौ साल का पुराना झगड़ा बिना मार-काट और हिंसा के निबट जाता तो यह अहिंसा की जीत का एक खूबसूरत उदाहरण होता और उसी बीज में से किसी दिन विश्व-शान्ति के उत्पन्न होने की आशा रखी जा सकती थी।

अर्थात् उन्हें उस वक्त अंग्रेजों के सामने हिन्दुस्तान की हालत, यहाँ के अहिंसात्मक संग्राम, उसके पीछे छुपे इतिहास को रखकर बातचीत करनी थी। उन्हें वहाँ की जनता को यह भी बताना था कि हिन्दुस्तान ब्रिटेन के द्वारा किस तरह चूसा जा रहा है, और इस शोषण में सभी अंग्रेज़ खुले और छुपे तौर पर किस तरह लगे हैं। जिसका नतीजा हिन्दुस्तान भुखमरी, रोग और नीचता के रूप में भोग रहा है। इसीलिए उन्होंने लंकाशायर के मज़दूरों से कहा था कि 'हिन्दुस्तान की गरीब औरतों और जुलाहों के मुँह से, जो किसी तरह सूत कातकर अपना गुज़ारा करते हैं, तुम लोग रोटी का टुकड़ा भी छीन लेना चाहते हो? मैं तुमसे उन दीन, हीन, असहायों की तरफ़ से यह पूछता हूँ।' उस वक्त सिर्फ लंकाशायर ही नहीं, बल्कि तमाम विदेशी कपड़े का बहिष्कार (Boycott) भारत क्यों करता है, यह बात उन मज़दूरों की समझ में अच्छी तरह आ गई थी। उस वक्त औरतों ने अपनी गोद के बच्चों को गाँधीजी के सामने रखकर उनसे आशीर्वाद लिये! उन्होंने वहाँ के ईस्ट एण्ड (पूर्वी हिस्से) के लोगों और पादरियों के सामने, हिन्दुस्तान के अहिंसात्मक आन्दोलन में जो आत्मसंतोष और रचनात्मक कार्यों का भाव है, उसका विशद वर्णन किया। गाँधीजी ने उन्हें यह भी बताया कि ब्रिटिश सरकार शराब और अफ़ीम के दुष्परिणामों की ओर ख़याल न करके उन्हें टिकाये रखने के लिए क्या-क्या तरकीबें खेलती है, और दूसरी ओर हिन्दुस्तान के औरत, मर्द और बच्चे इसके विरुद्ध कैसे आन्दोलनों में संलग्न हैं। भारत के ग़रीबों को मसाले के नाम पर सिर्फ नमक मिलता है, जिससे नमक-कर के कारण उन लोगों पर कितना बोझ बढ़ जाता है, यह भी उन्होंने कहा। अस्पृश्यता के पाप की जड़ उखाड़ने के लिए वर्तमान भारत क्या-क्या प्रयत्न कर रहा है, यहाँ की कांग्रेस ने इस कार्य को खास महत्व दिया है, और सवर्ण हिन्दू-समाज अपने पुराने पापों को धो डालने के लिए हरिजनों की कैसी सेवा कर रहा है, इसका भी वर्णन उन्होंने किया। वे जान-बूझकर लन्दन में, गरीबों की बस्ती में ठहरे, उन लोगों के जीवन में मिल-जुल गये और इस तरह लोगों को बता

दिया कि लन्दन के गरीबों और हिन्दुस्तान के कंगालों के बीच कितनी आत्मीयता और एकता है! लन्दन के उन गरीब मजदूरों ने गाँधीजी की रहन-सहन, सादगी, और जान-बूझकर अपनाई गई गरीबी, उनकी जीवनगत विशुद्धि और आस्तिक बुद्धि तथा भावना को अपनी आँखों से देखा, और समझे कि हिन्दुस्तान के अहिंसात्मक आन्दोलन की बुनियाद और आधार क्या है। उन्हें इस बात का भी अनुभव हुए बिना न रहा कि वह आन्दोलन किसीसे शत्रुता करना नहीं सिखाता, उसका आधार ही 'विश्व-प्रेम' है।

दरिद्रनारायण से अपना मानसिक और रचनात्मक सम्बन्ध निरन्तर जारी रखने के लिए गाँधीजी लन्दन में भी नियमित रूप से चर्खा कातते थे, उनका यह व्रत कभी भी टूटता न था। अगर सारा दिन भी काम-काज में बीत गया हो, साँस लेने की भी फुर्सत न मिली हो, ऐसी हालत में कभी-कभी किंग्सली हाल तक पहुँचने में आधी रात बीत जाती थी। एक बार तो वे रात को ढाई बजे घर आये; झट व्रतानुसार आधे घण्टे के लिए चर्खा कातने बैठे; कुछ देर सोकर फिर चार बजे की प्रार्थना के लिए उठ बैठे। और इस तरह पुनः दूसरे दिन के काम-काज का चक्र चला।

किंग्सली हाल में, गाँधीजी कई बार हम लोगों को भोजनालय में मदद करने के लिए भेजते थे। वहाँ आलू के छिलके निकालने, तरकारी काटने, बर्तन माँजने वगैरह के कामों में हमारे साथ-साथ किंग्सली हाल के भाई-बहनों को भी बहुत आनन्द आता था। वहाँ जो 'मूक-प्रार्थना' होती, उसमें हम लोग भी चुपचाप जा बैठते। शनिवार की शाम को हाल में मनोरंजक कार्यक्रम रखा जाता, जिसमें स्त्री-पुरुष मिलकर गाते और नाचते थे, गाँधीजी भी कभी-कभी देखने के लिए आ बैठते थे।

ऐसे ही एक अवसर पर किसीने पूछा—'गांधीजी, हमारे इस लोक-नृत्य में आप शामिल नहीं होंगे?' गाँधीजी ने हँसते-हँसते कहा—'क्यों नहीं?' फिर हाथ की लाठी बताकर बोले—'यह लाठी मेरी साथिन बनेगी!' उनकी यह चतुराई और विनोद देखकर सब-के-सब हँस पड़े। दूसरे एक अवसर पर हमारी मण्डली की एक बहन अभिमान के साथ इस नृत्य के प्रति घृणा प्रदर्शित करने लगीं। तब गाँधीजी ने उन्हें ठीक उलाहना देते हुए कहा—'तुम्हें यह समझना चाहिए कि इन लोगों के लिए यही नृत्य एक श्रेष्ठ मनोरञ्जन है; हमें जिन लोगों में शामिल होना है, उनके रहन और मनोरञ्जन में भी हमें मन से साथ देना चाहिए, और उसकी अच्छाई को सम-

मने की आदत डालनी चाहिए। तुम्हें यह भी न भूलना चाहिए कि लोक-नृत्य, विलायत का एक पुराना रिवाज़ है, और इंग्लैंड के राष्ट्रीय जीवन का अब एक अविभाज्य अङ्ग बन गया है।

शहर के इस हिस्से में रहनेवाले मज़दूरों के घर भी गाँधीजी कई बार गये थे। वहाँ की छः-छः पेनी में भोजन देनेवाली ग़रीबों को सादे 'होटलों' तथा मिल के उपहार-गृहों, मनोरञ्जन के स्थानों और इसी तरह के सार्वजनिक, विशेष कर मज़दूरों की बस्ती में जाने के लिए वे हम लोगों से भी आग्रह करते थे। उन्होंने हमें रोज़, कम-से-कम सोलह मील चलने की सलाह दी थी, लेकिन इतना वक्त हम कहाँ से पाते? उन्होंने हमें यह भी कहा था कि हम विलायत के पुलिस-मैनों से पहिचान करें, वहाँ की विभिन्न संस्थाओं की जानकारी हासिल करें, और वहाँ के संग्रहालयों (अजायबघरों), लायब्रेरियों, कला-संग्रहालयों को देख आयें, इसके साथ-ही-साथ वहाँ के जनसाधारण के स्वभाव—उसकी नियमित क्रियाशीलता तथा सामुदायिक अनुशासन और उनके आन्तरिक जीवन का सूक्ष्म अवलोकन करें। गाँधीजी खुद लगातार परिश्रम करते थे। बहुत ही कम नींद में काम चला लेते और फल, कच्ची तरकारी, खजूर और कुछ तोले बादाम से आहार की पूर्ति कर लेते थे। ऐसी स्थिति में भी उनके लिए जो फल वगैरह लाये जाते, उनके बारे में बारीकी से पूछताछ करते थे। एक बार मैंने योंही, बगैर खास खयाल किये, छः पेंस में एक छोटी-सी शहद की शीशी खरीद ली; उसके लिए मुझे जो कुछ उनसे सुनना पड़ा, उसे मैं ज़िन्दगी-भर नहीं भूल सकता। उस भूल के लिए उन्होंने आधे घण्टे तक उपदेश दिया। उन्होंने उस वक्त का भी वर्णन किया, जब वे विद्यार्थी बनकर लन्दन में रहते थे; बोले—'उस वक्त मैं एक-एक पैसा बचाने की कोशिश करता था। शाम को रोटी, कोको और एक सेब से ही काम चला लेता था। एक दिन, रोज़ की तरह सेबवाले से एक सेब लेकर बाक़ी के दो पेंस लेना भूल गया, और वे दो पेंस मैंने यूँ ही खोये! लन्दन में, मेरी पैसे की बाबत गैरखयाली का यह एक ही उदाहरण है, लेकिन वह मुझे अभी तक याद है, और जब-जब याद आता है तब-तब खेद और पछतावा होता है। मैंने अपने बचाव के तौर पर कहा—'मैं तो अनजान था, मुझे उसकी क़ीमत कैसे मालूम होती?' इस तर्क के लिए मुझे और ज़्यादा उलाहना सुनना पड़ा—तुम्हें यह सोच लेना चाहिए था; चार जगह तलाश करके खरीदना चाहिए था।

तुम्हें यह भी जानना चाहिए था कि यह तुम एक ग़रीबों के प्रतिनिधि के लिए खरीद रहे हो! ग़रीबों का प्रतिनिधि ग़रीबों के पैसे का ट्रस्टी होता है; अगर ट्रस्टी में ही भूलें और लापरवाहियाँ होंगी तो वह गुनहगार माना जायगा।' यह कहकर उन्होंने मुझसे अपने हृदय की वह व्यथा भी कही, जो रात-दिन उनके दिल में घर किये रहती थी। इन्होंने उड़ीसा में जो कङ्काल देखे थे, उनकी हालत पर वे बोले—'उस दशा का चित्र दिन-रात मेरी नजरों में समाया ही रहता है ; मेरी वही श्रद्धा मुझे रोकती है कि आखिर ईश्वर की योजना ही कल्याणकारी साबित होगी!' यह कहते-कहते उनका गला भारी हो गया और आँखों से आँसू टपकने लगे। उस वक्त सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास वहीं थे। गाँधीजी की यह दशा देखकर वे आश्चर्य से अवाक् रह गये, और मैं एक ऐसा पाठ सीख गया जो मुझे ज़िन्दगी भर काम देगा।

यह बात नहीं कि लन्दन के ईस्ट एंड के ग़रीब लोग गाँधीजी की इन सब बातों का मर्म न समझते हों। वे यह बात अच्छी तरह समझ गये थे कि गांधीजी भी हम-जैसे ही एक व्यक्ति हैं। और वे जो आन्दोलन ग़रीबों के उद्धार के लिए चला रहे हैं, वह भारत के साथ-साथ उनका अपना भी है। गाँधीजी ने वहाँ के पादरियों को भी यह बात समझाई कि हिन्दुस्तान के अहिंसात्मक आन्दोलन में ईसामसीह के उपदेश का ही व्यावहारिक उपयोग हो रहा है ; धार्मिक प्रतिनिधि के तौर पर पादरी का यह फ़र्ज है कि वे शाही हुक्म के अधीन न हों ; यही नहीं, जब शासक अपना फ़र्ज भूलकर अपनी सत्ता का दुरुपयोग करे, तब उसे रोक-टोककर ठीक रास्ते पर लाना चाहिए। केवल सत्य और न्याय के पक्ष में रहकर अधिकार के लिए जूझना भी पादरियों का एक फ़र्ज़ है; हिन्दुस्तान के आन्दोलन का आधार भी वही है। इसलिए उन्हें हिन्दुस्तान के अधिकारों के पक्ष में निडर होकर खड़े रहना चाहिए— यह भी गाँधीजी ने उन्हें समझाया। गाँधीजी सम्राट् की सत्ता और ठाट-बाट से निरपेक्ष थे, यह भी उन्होंने दिखा दिया था। जब वे खास निमन्त्रण से सम्राट् के बकिंघम महल के जलसे में सम्मिलित होने के लिए गये, तब भी उन्होंने अपनी पोशाक न बदली ; यहाँ तक कि गले में रोज़ पहने जानेवाले दुपट्टे की जगह धुला दुपट्टा भी न डाला, उसे पलटकर ओढ़ लिया। सम्राट् के साथ की बातचीत में भी उन्होंने उसी स्पष्टता से काम लिया। सम्राट् ने उनसे कहा—'मैं जब दक्षिण अफ्रिका आया तब आप मुझे मिले थे। उस वक्त, और बाद सन् १९१८ तक तो आप अच्छे

आदमी थ, लेकिन बाद में बहुत कुछ गड़बड़ी हो गई है !' गाँधीजी ने गंभीर मौन धारण कर इन शब्दों को सुना ; लेकिन जब फिर बादशाह ने पूछा कि 'आपने मेरे बेटे का बहिष्कार क्यों किया ?' तब गाँधीजी ने जवाब दिया—'आपके बेटे का नहीं, बल्कि ब्रिटिश ताज की सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि का बहिष्कार किया गया है !' तब सम्राट् आगे बढ़कर बोल उठे—'किसी भी देश में राजद्रोह माफ़ नहीं किया जा सकता ; सरकार को अपना शासन-यंत्र चलाने के लिए उसे दबा देना ही चाहिए !'— ये शब्द सम्राट् ने कहे इसलिए भी सहन करके चुपचाप नहीं रहा जा सकता था। गाँधीजी ने अपने स्वाभाविक शिष्टाचार के साथ दृढ़ता से कहा—'इस विषय में मैं वाद-विवाद करूँ, इसकी तो आप आशा भी नहीं करते !'

ऐसी ही साफ़-साफ़ बातें उन्होंने रोम में मुसोलिनी से भी कही थीं। मुसोलिनी ने गाँधीजी को खुश करने के लिए पूछा—'क्या तुम यह नहीं चाहते कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान हमारी इटली से भी सम्बन्ध स्थापित करे ?' गाँधीजी इस बात का आशय समझ गये ; वे उस बात से लुभा जाते, ऐसा तो था ही नहीं ; बोले—'मेरी कल्पना का स्वतन्त्र हिन्दुस्तान, सिर्फ़ इटली नहीं बल्कि सारी दुनिया से मित्रता रखकर शान्ति से रहना चाहेगा।' तब उस फासिस्ट डिक्टेटर ने पुनः व्यंग्य से पूछा—'क्या तुम सचमुच यह मानते हो कि अहिंसा से हिन्दुस्तान को आज़ादी मिल जायगी ? मैंने जो यह फासिस्ट ढङ्ग से सैनिक-राज्य का निर्माण किया है, इसके विषय में आपका क्या खयाल है ?' गाँधीजी ने सत्यवक्ता की तरह स्पष्ट शब्दों में कह दिया—'मुझे तो लगता है, यह आपका खयाली महल ही होकर रहेगा !'

रोम के सीन्यौर गायडा ने अपने "ज्यौर्नल-डी-इटालिया" नामक पत्र में गाँधीजी की जो 'मुलाक़ात' प्रकाशित की थी, उसका उल्लेख 'गाँधीजी की यूरोप-यात्रा' में किया गया है। यह 'मुलाक़ात' शुरू से आखिर तक बनावटी थी। जब गाँधीजी विल्वन में महर्षि रोमाँ रोलाँ के यहाँ ठहरे, तब महर्षि ने गाँधीजी को वहाँ के छल-कपट से सावधान करते हुए कहा—'आप किसी भी नये आदमी को सामने हाज़िर रखे बिना किसी भी इटलीवाले से न मिलें।' स्वदेश पहुँचने के पहले ही गाँधीजी ने 'सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन' की योजना तैयार कर ली है, यह बात भी सही न थी। वे तो यहाँ तक कोशिश करना चाहते थे कि अगर 'गोलमेज़-परिषद्' के अवशेषों में से कुछ अंश बचाये जा सकें तो बचा लें; वे इस बारे में एकदम निराश भी न हुए

थे। विल्वन से रवाना होने के पहले उन्होंने सर सेम्युअल होर को इस आशय का एक पत्र भी लिखा था, और हिन्दुस्तान पहुँचने पर उनके जवाब का इन्तज़ार भी किया था। उसके बाद वैसा उत्तर भी आया जिसमें आशा के लिए काफ़ी स्थान था; लेकिन शिमला के सत्ताधीश ज़रा भी खतरा मोल लेने के लिए तैयार न थे। यहाँ तक कि गाँधीजी के जहाज़ 'पिल्स्ना' के हिन्दुस्तान के किनारे के पहुँचने के पहले ही उन अधिकारियों ने पं० जवाहरलाल, बादशाह खाँ और मरहूम ज़नाब शेरवानी को गिरफ्तार करके समझौते की सब आशाओं पर पानी फेर दिया। गाँधीजी के आने के एक सप्ताह के भीतर-भीतर तो कांग्रेस के अधिकांश नेता जेल के सीखचों में बन्द कर दिये गये और पुरज़ोर से पुनः 'आर्डिनेंस-राज' चलने लगा।

किसीके भी प्रति सभ्यता और शिष्टाचार-पूर्वक व्यवहार रखने के लिए गाँधीजी कितने उत्सुक रहते थे, उसका एक उदाहरण मैं यहाँ देता हूँ। बम्बई पहुँच जाने के बाद, जब कार्यकारिणी समिति की बैठक जारी थी, तब उन्होंने मुझे 'ब्रिटिश' बनावट की दो जेब-घड़ियाँ लेने के लिए बाज़ार भेजा ? गुप्त पुलिस के जो दो अधिकारी हमेशा गाँधीजी के साथ (विलायत में) घूमते रहते थे और जो सर सैम्युअल होर के खास हुक्म से ब्रिंडिसी तक उनके साथ आये थे, उन दोनों को, गांधीजी ने बिदा करते वक्त घड़ियाँ देने का वचन दिया था। मैं बाज़ार में घूम-घूमकर ढूँढ़ता रहा, पर ब्रिटिश घड़ियाँ न दिखाई दीं। इसलिए बहुत-सी 'स्विस मेड' घड़ियाँ गाँधीजी को दिखाने के लिए ले आया। उस वक्त गांधीजी के सम्मुख ब्रिटिश माल के बहिष्कार का भी प्रस्ताव आया था, लेकिन कार्य-समिति ने उसे अभी तक पास न किया था। गाँधीजी ने कहा 'ये दो घड़ियाँ तो 'ब्रिटिश-मेड' ही होनी चाहिएँ ताकि उनको 'ब्रिटिश माल' के बहिष्कार की यकायक शंका न हो जाय, क्योंकि अभी तक कार्य-समिति ने ब्रिटिश माल के बहिष्कार का प्रस्ताव पास नहीं किया है। इसलिए मैंने शाम तक शहर की सभी घड़ी की दूकानें देख डालीं तब कहीं 'ब्रिटिश' बनावट की दो निकल सिल्वर घड़ियाँ लाकर उनके हाथों में रखीं। सचमुच सारे बम्बई शहर में उस वक्त 'ब्रिटिश' बनावट की वे दो ही घड़ियाँ थीं।

राजनैतिक प्रयत्नों में भी गाँधीजी ने कुछ करना बाकी न रखा; एक आदमी से जो कुछ भी किया जा सकता है, वह उन्होंने किया। सर ज्याफ्रे कार्बेट भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के सेक्रेटरी के तौर पर विलायत गये थे। जब उन्होंने संघ-शासन-

विधान-समिति की पहली बैठक में गांधीजी का भाषण सुनने के बाद उन्हें एक व्यक्तिगत खत लिखा, जिसमें उन्होंने लिखा था—'कल जब मैं आपके मुँह से निकलती ज्ञानवाणी सुन रहा था, तब मुझे इस बात का गर्व भी हो रहा था कि आप उस प्रतिनिधि-मंडल के सदस्य हैं, जिसका मैं मन्त्री हूँ; यह मेरा सौभाग्य है।'

उन दिनों गाँधीजी बिना किसी योजना अथवा टिप्पणी के बहुधा पहले विचार किये बिना ही ऐन वक्त पर गोलमेज़-परिषद् में भाषण देते थे। इसके बारे में "न्यूयार्क टाइम्स" के संवाददाता ने लिखा था कि 'यह तो गाँधीजी ने भाषण देने का एक नया तरीका निकाला है; परिषद् के समाप्त होने के पहले ही सारी दुनिया इससे वाक़िफ़ भी हो जायगी।'

लेकिन उस परिषद् के वक्त विरोधियों ने उनके विरुद्ध काफ़ी जाल फैला दिया था; टोरी-पार्टी हिन्दुस्तान से अपने शिकंजे हटाने के लिए ज़रा भी राज़ी न थी, और यही सोचकर इस पार्टी ने मेकडानल्ड की संयुक्त सरकार में 'भारत-विभाग' अपने हाथों में कर लिया था। 'भारत-रत्न' को छोड़ने की उनकी ज़रा भी मर्ज़ी न थी।

उन्होंने गाँधीजी को भटकाने के लिए कई तरह की तरक़ीबें आज़माईं; दूसरे किसी व्यक्ति के लिए उस जंजाल में से निकलना मुश्किल था। 'अल्पमत-निर्णय' हो जाने के बाद डा० अंबेडकर ने हरिजनों के लिए अलग मताधिकार की माँग परिषद् में पेश की। उस वक्त टोरी-पार्टी के सूत्रधार खुश होकर एक दूसरे के कान में कहने लगे—'अब गाँधी के दिन आ लगे!' उन लोगों ने यह आशा भी रखी थी कि हरिजन अपने योग्य और चुने व्यक्ति के परिषद् में भेजने की माँग कर रहे हैं, और हरिजन के 'हितकारी' (गाँधीजी) इस बात का विरोध कर रहे हैं—यह तमाशा दुनिया को देखने को मिलेगा। इस बारे में पहले से काफी तैयारी रखी गई थी, और अमेरिका से भी इस बारे में पूछताछ के तार आने ज़ारी हो गये थे।

लेकिन इस बेवक्त खुशी की जगह दूसरे दिन परिषद् में घबराहट फैल गई; गाँधीजी ने अल्पमत के उस 'निर्णय' या 'करार' को निर्दयतापूर्वक चीरकर अलग कर दिया, और बता दिया कि यह 'निर्णय' कांग्रेस के विरुद्ध एक भीषण षड्यंत्र है। इस षड्यंत्र में शामिल होने के लिए गाँधीजी ने ब्रिटिश सरकार पर जो कलंक का दोषारोपण किया था, वह अभी तक नहीं धुल पाया।

उन दिनों जनरल स्मट्स फरडे-शताब्दी-उत्सव मनाने के लिए इंग्लैंड आये हुए

थे। उन्होंने गांधीजी से कहा था कि—'अगर मेरी मदद से आपकी ताकत बढ़ती हो और हिन्दुस्तान और इंग्लैंड में कोई स्थायी समझौता होता हो, तो मैं यहाँ और ज़्यादा दिन ठहर जाऊँगा।' उन्होंने अपने सब प्रयत्न कर देखे; सेंडिंगहम में जाकर सम्राट् से भी मिले। लेकिन वहाँ से निराश होकर उन्हें वापस लौटना पड़ा। वहाँ के ऊँचे और प्रतिष्ठित माने जानेवाले व्यक्तियों ने समाधान के विरुद्ध बड़ी दीवार खड़ी कर रखी थी। इंग्लैंड से जाने के पहले जनरल स्मट्स गाँधीजी से मिलने के लिए हमारे ८८ नं० नाइट्स ब्रिज के आफिस में आये। गाँधीजी कहीं बाहर गये थे। गाँधीजी ने खास जनरल स्मट्स का सत्कार करके उन्हें बैठाने के लिए ही मुझे भेजा था। यह सुनकर उन्होंने कहा—'ये लोग गाँधीजी को पहचानते क्यों नहीं? मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ; क्योंकि मुझे उनके साथ बीस सालों का अनुभव है। मैंने लोगों से कह दिया कि अंत में तुम्हें गाँधीजी के साथ ही समझौता करना होगा; वे अकेले हो किसी विषय पर, हिन्दुस्तान की ओर से, दृढ़तापूर्वक निर्णय दे सकते हैं।'

सच बात तो यह है कि उस वक्त ब्रिटिश सरकार किसी भी हालत में सत्ता छोड़ना नहीं चाहती थी। प्रो० लीस-स्मिथ पहले की ब्रिटिश सरकार के पोस्ट-मास्टर-जनरल के ओहदे पर थे। उन्होंने परिषद् समाप्त होते वक्त गाँधीजी से साफ़ शब्दों में कह दिया था कि—'इस वक्त तुम्हें इससे ज्यादा कुछ नहीं मिल सकता...इस वक्त, इन लोगों की दृष्टि में तुम्हारी शक्ति का मूल्य इतना ही है!'...मरहम मि० डेविड लायड् ज्यार्ज ने तो इससे भी स्पष्ट बात गाँधीजी से कही कि—'यदि तुम्हें इससे ज़्यादा चाहिए तो सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन और असहयोग द्वारा अपनी माँग को सिद्ध करना होगा!' उन्होंने उस आन्दोलन में पूरी सहानुभूति और मदद का वचन दिया था।

इससे ज़्यादा गाँधीजी क्या कर सकते थे? कोई भी क्या कर सकता था? और करता भी तो परिणाम में क्या अन्तर डाल सकता था? यह सच है कि गोलमेज़-परिषद् में उन्होंने जो मेहनत की, उससे तत्काल ध्येय की सिद्धि न हुई; लेकिन उनके उस कार्य से परिषद् के बाहर कार्य का जो बीज बोया गया था, वह आज भी फल दे रहा है। श्रीमती म्युरीएल लेस्टर की इस किताब में, गाँधीजी की विलायत में की गई प्रवृत्तियों और उसके गहरे प्रभाव का चित्रण है।' 'गाँधीजी' की यूरोप-यात्रा' के

उद्देश्यों के राजनीतिक पहलू को जानने के लिए तो गाँधीजी के गोलमेज़-परिषद् में दिये गये भाषणों का और महादेव देसाई द्वारा विलायत से लिखे गये पत्रों का मनन ज़रूरी है। संग्रह अंग्रेजी में 'नवजीवन प्रकाशन-मंदिर" की ओर से "दि नैशन्स वायस (The Nations Voice,) इस नाम से प्रकाशित किया गया है। गाँधीजी की यूरोप-यात्रा उस पुस्तक की पूर्ति करती है। उसे इस पुस्तक के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

बम्बई : २१-८-४५ प्यारेलाल

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

गांधीजी की यूरोप-यात्रा

गांधीजी की यूरोप-यात्रा

(१)

किंग्सली हॉल का निमंत्रण

सन् १९३१ में जब गांधीजी विलायत आये थे, तब हमारे किंग्सली हाल में ही ठहरे थे। यह किंग्सली हाल लन्दन के पूर्वी भाग के बड़े भारी औद्योगिक मुहल्ले के बीचों-बीच सेवा का एक केन्द्र है, या यूँ कहो कि आश्रम है। अक्सर इसके आसपास के रहने वाले लोग ही इसे चलाते हैं और इसी के द्वारा वे अपनी शिक्षा, सामाजिक कल्याण और आत्म-विकास को निजी प्रयत्नों से बढ़ाते चलते हैं। इसमें दस स्वयं-सेवक पूरे दिन काम करनेवाले हैं। इस कार्य के बदले में उन्हें भोजन, साप्ताहिक सात शिलिंग और रहने के लिये पहले मजले पर बने हुए कमरों में से एक कमरा दिया जाता है। ये लोग धर्म, जाति, राष्ट्र आदि के भेद-भावों को भूल कर सम्मिलित भोजन, व्यवस्था, लिखना-पढ़ना, साफ़-सफ़ाई और प्रार्थना आदि करते हैं। किंग्सली हाल का मुख्य ध्येय प्रभु ईसा द्वारा बताये हुए ईश्वर-सान्निध्य के अनुभव का अनुशीलन ही है। गांधीजी के आश्रम और किंग्सली हाल के आदर्श और आकांक्षाओं में बहुत ही साम्य है।

मुझे गांधीजी के आश्रम का अनुभव था ही; अतः मुझे शुरू से पूर्ण विश्वास था कि उन्हें लन्दन की किसी और जगह ठहरने की अपेक्षा इसी बो मुहल्ले में ठहरना अधिक उचित प्रतीत होगा। इसी कारण जब मुझे मालूम हुआ कि वे गोलमेज-परिषद में आ रहे हैं तो मैंने उन्हें किंग्सली हाल में ठहरने का निमत्रण भेजा। उन्होंने जवाब में लिखा—'इसमें कोई शक नहीं कि अन्य जगहों की अपेक्षा किंग्सली हाल में रहना मुझे अधिक अच्छा लगेगा। परन्तु स्वागत-मण्डली मेरे रहने का और कहीं प्रबंध कर रही होगी। उनके निर्णय का उल्लंघन मैं नहीं

कर सकता। इसीलिए मेरी सलाह है कि तुम उनसे मिलो और उन्हें मेरा यह पत्र भी दिखाओ। मैं उन्हीं के हाथों में हूँ।'

पत्र मिलते ही मैंने एक भी क्षण नहीं गँवाया। मैं सीधी मि० हेनरी पोलक के कार्यालय में गई और अपने निमंत्रण की बात उनसे कही।

मि० पोलक—'यह तो ठीक है, परन्तु यह संभव नहीं। वेस्ट मिन्स्टर और सेंट जेम्स के महल से इतनी दूर रहने में उन्हें कितनी अड़चन होगी? इसका तो ज़रा ख्याल करो! इसमें तो कोई सन्देह है ही नहीं कि उन्हें वहीं रहने में हार्दिक आनन्द मिलेगा और सच कहा जाय तो वही जगह उनके रहने लायक भी है, पर इन सब बातों का विचार यहाँ किया नहीं जा सकता।'

संयोग से मि० एण्ड्रूज भी मि० पोलक के कार्यालय में ही थे। उनके पास भी उसी दिन इसी आशय का गांधीजी का पत्र आया था। अतः वे भी बोले—'उन्हें अन्य जगहों की अपेक्षा बो के मुहल्ले में ही अधिक हार्दिक आनन्द होगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ; पर काम-काज के कारण इतनी दूर रहना कैसे संभव हो सकता है, यह मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।

दोनों ने मुझे कुरसी पर बैठने के लिए कहा, पर मैं बैठी नहीं। मुझे मालूम था कि मुझे बहादुर की तरह खड़े रहकर ही लड़ाई चालू रखनी होगी। सिर्फ परिषद् की ही सफलता का विचार करनेवाले तटस्थ आदमी की तरह मैंने कहा,—'मि० पोलक, आप जो कह रहे हैं उसे मैं भी स्वीकार करती हूँ। वे हमारे ही यहाँ आकर रहें, यह मेरी इच्छा है। हमारे बो के लोगों को गांधीजी के सहवास से फ़ायदा होगा और उनका आतिथ्य करने में उन्हें अत्यन्त आनन्द मिलेगा। परन्तु इससे भी आगे मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि गांधी जी लन्दन के पूर्व भाग में ही रहेंगे तथा यह उनके और उनके कार्य के लिए बड़ी ही उत्तम वस्तु होगी। गरीबी के बारे में उनके क्या विचार हैं, यह तो सभी जानते हैं। उन्हें मजबूरन लन्दन आना पड़ रहा है, इसीलिए वे गरीबी के विचारों को छोड़े दे रहे हैं, ऐसा हमें स्वप्न में भी ख्याल न करना चाहिए। यहाँ, हम ऐसे कुछ थोड़े ही लोग, बहुत ही कम समय, उनकी तरह दैनिक-जीवन व्यतीत करने की कोशिश करते हैं। अब वे पश्चिम में

हमारे यहाँ आ रहे हैं; ऐसे समय हमें उनके रहन-सहन में परिवर्तन करने का अधिकार ही क्या है? अब हम लोगों को यह आशा है कि यह गोलमेज-परिषद् भारत के इतिहास में नये युग का आरंभ करेगी। तब उसका प्रतिनिधि परदेशों के मंत्रियों और उन देशों के प्रमुख व्यक्तियों की खातिर अपने जीवन को नये मार्ग पर चलाये, यह भी तो उचित नहीं। हम देखते आये हैं, दिन प्रतिदिन सभायें होती हैं, बरसों से निःशस्त्रीकरण तथा अन्य अनेक विषयों की परिषदों के बाद परिषदें होती हैं और बिना किसी सिद्धि के सभाएँ यूँ ही समाप्त हो जाती हैं। क्या इसका कारण परिषद् में होनेवाली कृत्रिमता का वातावरण नहीं? जिस परिषद् के सदस्य 'डॉरचेस्टर' या 'सेवॉय' जैसे होटल के कृत्रिम वातावरण में ही डूबे हुए हैं, वहाँ और हो भी क्या सकता है? अभी ऐसी बातों में नया रिवाज़ डालने का समय नहीं आया है? कुछ भी हो, भारत के गरीब से गरीब लोगों का प्रतिनिधि लन्दन के गरीब से भी गरीब लोगों के बीच में रहेगा; इससे बेहतर बात और क्या हो सकती है?"

मेरे उलाहने और व्यंग-वाक्य सुनकर मि० पोलक जरा हँसे, कहा—'आपकी बात में सोलह आने सच मानता हूँ। परन्तु यहाँ हमें व्यावहारिक बनना चाहिए। गांधीजी की तबीयत का भी हमें ख्याल रखना चाहिए।'

मैंने उन्हें विश्वास दिलाते हुए कहा,--'हाँ, इसीलिए तो मैं यह बात कह रही हूँ कि लन्दन के पश्चिम भाग की हवा बासी और बहुत ही गन्दी होती है, और उसमें पेट्रोल का धुआँ भी बेहद भरा हुआ होता है। ऊँचे-ऊँचे मकान वायु की लहरों को गली में आने से रोक लेते हैं। बो की हवा अधिक अच्छी और स्फूर्ति-दायक है। हमारे यहाँ नदी से हवा के झोंके आते हैं। स्वास्थ्य-निष्णातों ने अनेक बार पूर्वीय लन्दन की हवा जाँची है और कहा है कि पश्चिमीय लन्दन की अपेक्षा वहाँ की हवा बेहतर है। मि० पोलक, आपको शायद यह मालूम नहीं है क्यों?'

'ना, नहीं था।' उन्होंने हँसते हुए स्वीकार किया। 'पर यह सच है। हम लोग जब ट्यूब ट्रेन (जमीन के अन्दर चलने वाली गाड़ी) से निकल कर बो के साफ और चौड़े रास्ते पर आते हैं, तब इसका स्पष्ट आभास हो जाता है। हमारी सभी

छोटी-छोटी गलियों पर पेड़ लगे हुए हैं। हमारे यहाँ ऊपर खुली छत है, जहाँ गांधी जी सो सकेंगे और जितनी धूप पड़ती है, उसका सेवन भी कर सकेंगे। आप तो उनके साथ अफ्रिका में बहुत समय तक रह चुके हैं। अतः आप तो जानते ही होंगे कि घर के नौकरों और अन्य व्यवस्थाओं से उन्हें कितनी बेचैनी होती है। हम लोग यह भी तो नहीं चाहते कि सुबह जब वे उठकर अपनी प्रार्थना करें तब आस-पास के लोग घबरायें, आश्चर्य में पड़ें, या दिङ्मूढ़ होकर उन्हें देखते रहें। हमारे यहां तो गांधी जी हों, या न हों, सुबह प्रार्थना होती ही है, और वह हमेशा की तरह होती ही रहेगी। उनके आने से हमें अपना कार्यक्रम अधिक बदलना न पड़ेगा। हमारा सामान्य जीवन तो बाक़ायदा चलता ही रहेगा। उन्हें वहाँ बहुत जँच जायगा। रोज रात को घर जाते समय मोटर में ४० मिनट बैठने की जगह १० मिनट बैठने के ज़रा से लाभ के हेतु, हम अपने मन में इतनी बड़ी असंगति क्यों होने दें? गांधी जी लन्दन के अन्य किसी भाग की अपेक्षा बो मुहल्ले में अधिक आराम से रहेंगे। और उनका स्वास्थ्य भी वहाँ अच्छा रहेगा। इस विषय में इस समय मुझे पूरा पूरा विश्वास है।'

मि० पोलक,—'आपको वकालत बहुत अच्छी आती है। तो भी मिस लिस्टर, मुझे अब भी आपको स्पष्ट कहना ही होगा कि यह असंभव है!'

परन्तु मेरे मन में तो यह पूर्ण विश्वास था कि मैं जीत गई हूँ।

इसके बाद के कुछ सप्ताहों में गांधी जी के अनेक भारतीय और अंग्रेज मित्र किंग्सली हॉल मुलाकात लेने आ गये।

हम लोग हरेक से पूछते थे—'क्या गांधी जी यहाँ ठहरेंगे?'

सामान्यतः उत्तर मिलता—'मुझे आशा तो है।' परन्तु जो गांधी जी के निकट सम्पर्क में आ चुके थे वे कहते थे—'मुझे तो पूरा विश्वास है वे यहीं ठहरेंगे।'

उन दिनों तीन भिन्न-भिन्न धर्मों के साधु भी हमारे आश्रम की मुलाकात के लिए आए। वे ईसाई, बौद्ध और हिन्दू धर्म के थे। सब गेरुए वस्त्र धारण किये हुए थे। इनके बोलने का शान्त तरीका, इनकी सौम्य गौरवशाली गतिविधि और इनकी सभ्यता देखकर बो के लोगों को बहुत आनन्द हुआ। उन्हें जब भाषण देने

को कहा गया तो पहले थोड़ी देर उन्होंने मौन रखा। उस समय ऐसा मालूम हुआ कि श्रोता-गणों के मन में भी ईश्वरीय-शान्ति छा गई है। ईसाई पादरी हमारे साथ सात दिन तक रहे। और उन्होंने बो के निवासियों पर अपने व्यक्तित्व का गहरा असर डाला।

एक दिन हेम्पस्टेड के आर्य-भवन से पंडित माल्वीयजी के पुत्र सपरिवार किंग्सली हॉल के निरीक्षण के लिए आये। उन्होंने गांधीजी की सुख-सहूलियत के लिए अनेक सूचनाएँ दीं। बो के लड़कों ने उनकी मोटर को घेर लिया। आज पहली बार उन्होंने भारतीय स्त्री-पुरुषों को इतनी अधिक संख्या में देखा था। बच्चों को बहुत आनन्द हुआ। और उन्होंने हो-हल्ला मचा दिया। उनके जाने के बाद बच्चों ने मुझसे कहा—'बहन जी! वे लोग बहुत ही अच्छे थे।'

मैंने कहा—'हाँ, पर तुम्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि भारतीय लोग जब मोटर में आवें तो तुम्हें शोर नहीं करना चाहिए। तुम सब ने मोटर को घेर लिया, उसके फुटपाथ पर चढ़ गये और खिड़कियों से झाँकने लगे, इससे वे बच्चे कितने घबराये होंगे?'

'नहीं बहन जी! वे घबराये नहीं थे, वे तो हँस रहे थे।'

मैंने एक बात और कही,—'जो भारतीय यहाँ आते हैं, उनका स्वागत करने के लिए उनके रीति-रिवाज जानने के लिए हम यदि लड़कों का एक स्वयं-सेवक दल बना दें तो कैसा हो?'

'वह क्या?'

'देखो, भारत में गांधीजी जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ लोग इकट्ठे तो होते हैं, पर वे एक दूसरे से हाथ नहीं मिलाते।'

'सच बहन जी?'

'हाँ, उसकी जगह वे लोग ऐसा करते हैं।' मैंने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। भारत की जलवायु के कारण लोगों के हाथ गरम और चिकने हो जाते हैं, इसीलिए यह तरीका अधिक अच्छा है। लोग गांधीजी के आसपास घिरे रहते हैं, पर वे शान्त रहते हैं। तीन सौ चार सौ आदमियों का समूह गांधी जी के दर्शन के लिए

घण्टों तक खड़ा हुआ मैंने देखा है। परन्तु ये लोग खड़े हैं, यह तुम्हें मालूम न हो इसलिए वे बिल्कुल शान्त खडे रहते हैं।'

'ऊँ-ऊँ-ऊँ !' एक बच्चे ने सन्देहपूर्वक कहा। परन्तु शेष सब आश्चर्य की आँखों से एकाग्र-चित्त, शान्तिपूर्वक सुनते रहे।

'तुम्हें गांधीजी (मि० गांधी) अच्छे लगेंगे ?' मैंने कहा, 'उन्हें बच्चे बहुत प्यारे हैं।'

'बहनजी ! उनका नाम कैसे बोला जाता है ?'

मैंने उन्हें यथा-शक्ति शुद्ध उच्चारण बताया, और मैं चली गई। मेरा बताया हुआ नाम वे लोग मन में रटते रटते बिखर गये।

अखबार वालों के करिश्मे

(२)

लन्दन की फ्लीट स्ट्रीट में (समाचार-पत्रों के कार्यालयों की गली) गांधीजी के पहुँचने पर इस तरह की बातें होने लगीं,—'मि० गांधी की अखबारी दुनिया में बहुत क़ीमत है, इस बारे में शायद सिर्फ सम्राट् ही उनसे अधिक हों।' अतः हरेक समाचार-पत्र अब यह कोशिश कर रहा था कि गांधीजी के बारे में अच्छे से अच्छे समाचार देकर खूब पैसे कमाये। गांधीजी के साथ-साथ अब किंग्सली हाल का नाम भी लिया जाने लगा था और उसे सहायता देने की भी अनेक बातें होने लगीं थीं। हृष्ट-पुष्ट और कद्दावर सज्जन अब मुझ से मिलने आने लगे और कहते—'यदि आप मि० गांधी की मुलाकात-सम्बंधी सभी समाचारों के हक हमारी कम्पनी को दे दें, तो उससे जो लाभ होगा उसमें से आधा हिस्सा आप को दिया जायगा।

इस तरह के अन्य भी अनेक लोग आते और इसी तरह की बातें कहते,—'ये हक आप हमारी कम्पनी को दें।'—और मैं तो कहती हूँ कि मेरी ये सभी बातें उन्हें मुफ्त की भेंट ही थीं।

सिनेमा वाले, ग्रामोफोन कम्पनी वाले और फोटोग्राफरों का अखंड प्रवाह मुझ से मिलने आता ही रहा। मैं जहाँ कहीं भी होऊँ, यहाँ तक कि देश के अन्दर से अन्दर के भाग में भी रहकर मुझ पर तारों की बौछार होने लगी, फोन पर फोन आने लगे और लोग मुझे खोज-खोज कर मिलने आने लगे। एक आदमी ने तो कमाल ही कर दिया, वह चाहता था कि मैं उसे परिचय के कुछ शब्द लिख दूँ, जिसे वह मार्सेलस के बन्दरगाह पर गांधीजी के उतरते ही उनके सामने रख दे। इसके बदले उसने सौ पौण्ड देने को भी कहा और बुरी तरह पीछा पकड़ा।

मैंने पूछा—'मैं अपने अतिथि को कैसे बेच सकती हूँ ?'

लेकिन फिर भी सप्ताहों तक वह मेरे पीछे-पीछे फिरा और इस दर्मियान हम दोनों में अनेक बार बात-चीत हुई। आखिरकार उसे मेरे हठी स्वभाव का परिचय मिल गया। बिल्कुल अन्त में उसने कहा—'देखिये, मिस लिस्टर! हमारी इस व्यापारी योजना में मि० गांधी दिलचस्पी लें ऐसा कुछ आप करें तो आप वचन दें या न दें अथवा उसमें कामयाबी मिले या न मिले, हमारी कम्पनी आपके किंग्सली हाल को सौ पौण्ड तो अवश्य देगी ही।'

पर इन अनोखे वचनों में से एक भी सत्य साबित नहीं हुआ। इन मुलाकातों से पहले तो मुझे बहुत खुशी हुई। मन में ऐसे विचार आए कि इस मौके से फायदा उठाकर अंग्रेजों को गांधीजी की फिलासफी समझाई जा सकती है, भारत और गांधीजी के बारे में उनकी कल्पना-शक्ति को अधिक तीव्र किया जा सकता है और आगे के कार्य, जिसमें कि गांधीजी पर चालीस करोड़ लोगों की जवाबदारी और उनके भाग्य-निर्णय का भार है, आदि कार्यों के बारे में भी अंग्रेजों के मन को कुछ अभ्यस्त किया जा सकता है। परन्तु कुछ ही सप्ताहों बाद मैंने ये विचार छोड़ दिये।

सिनेमा के लोग जो सामान ले आए थे उसे देखकर हमारे आश्रम के लोगों का कौतूहल जाग उठा। तीन बार अलग-अलग समय में किंग्सली हाल की फिल्म ली गई। उनके इस कार्य में मदद देना आश्रम-वासियों के दिल में नई उमंग उत्पन्न करनेवाला था। इस विषय का एक किस्सा सुनिये। मैं अपने कमरे के द्वार पर खड़ी हूँ, वहाँ न तो टेलीफोन है, न लाउड-स्पीकर (ध्वनिवर्धक यंत्र) तो भी किसी की शान्त और परिचित आवाज सुनाई देती है,—'मिस लिस्टर अभी आपने जो कहा, वह बहुत ही सुन्दर और स्पष्ट सुनाई देता है, आप उसे फिर कहेंगी ; आपको ऐतराज तो नहीं ?' यह अनुभव एक चमत्कार के समान ही तो है न!

विज्ञापन और प्रचार के लिए जैसे झगडे हमेशा होते हैं, वैसे इस प्रसंग पर भी हुए। एक बार हमारे आश्रम के दो आदमी जमीन पर बैठे वेदी पर रखे जाने वाले पीतल के लोटे और बरतनों को माँज रहे थे, इसका चित्र उन लोगों ने लिया और उसका गलत वर्णन इस तरह किया,—'इस चित्र में मिस लिस्टर के कुछ सहायक

मि० गांधी के स्वागत की तैयारी कर रहे हैं।' इसे पढ़कर मेरे स्वाभिमान को चोट पहुँची; क्योंकि महीनों पहले पीतल के बरतनों को आनेवाले मेहमान के लिए मांज रखना कोई अच्छी गृह-व्यवस्था नहीं कही जा सकती। इसके अलावा हमारी प्रतिदिन की दिनचर्या को भी अखबार वालों ने अतिथि के लिए जबरदस्त तैयारी ही बताया, मैंने इसका ज़ोरों से प्रतिवाद किया।

अपना फोटो सिनेमा के परदे पर देखना एक विचित्र-सा अनुभव था, परन्तु अपने बोले हुए शब्दों को सुनना तो उससे भी ज्यादा असाधारण था। मेरी आवाज़ इस तरह की होगी इसका मुझे बिल्कुल भी ख्याल न था। जब कोई पीछे बैठा हुआ आदमी चिढ़ी हुई आवाज़ से यह कहता,—'ओ हो! अब बस मिस लिस्टर की सुनना है' तो स्वाभाविक ही क्रोध आ जाता।

पूछताछ करने वाले कौतूहली आदमियों का तो मानो ताँता ही लग गया। हरेक अखबार वाला ऐसी कोशिश करता था कि उसी की तरफ मेरा ध्यान जाय, मैं उस अकेले की ही बात सुनूँ, सिर्फ उसके साथ ही बात करूँ और गांधीजी के विषय में जो कुछ जानती होऊँ, वह उसे ही कहूँ। इतना होते हुए भी उन अखबारों में जो कुछ छपता था वह असंभव और अप्रासंगिक होता था। लेख बड़े तो खूब होते थे; और पत्रकारों व मेरे बीच जो बात-चीत होती थी उसे राई का पहाड़ बनाकर छापा जाता था। इतने पर भी मेरे मान्य अतिथि के या भारत के बारे में लिखी हुई बातों को पढ़ने की मेरी अभिलाषा हमेशा निष्फल ही जाती थी। गांधीजी के बारे में जो कुछ लिखा जाता था, उसका अधिक भाग बेकार ही होता था; वह मानसिक भूख के प्रति पौष्टिक खुराक नहीं, अपितु भूसा ही था। ब्रिटिश जनता बमुश्किल-तमाम गांधीजी के बारे में हररोज आधा कालम ही पढ़ सकती थी और उसमें यथार्थता का तो नाम भी नहीं होता था। हमारे पूर्वी भाग के एक व्यक्ति ने इस परिस्थिति का आभास एक ही वाक्य में दिया था,—'महीनों से अखबार वाले गांधीजी के बारे में कुछ-न-कुछ छापते ही हैं, पर सिवा इसके कि गांधीजी कच्छ पहनते हैं और बकरी का दूध पीते हैं, उन्होंने कोई नई बात नहीं बताई।'

और इन दोनों बातों को भी ऐसा विकृत रूप दिया जाता था कि लोगों के मन में इससे उल्टे ही विचार पैदा हो जाते थे। इन वर्णनों से सामान्यतः यही ख्याल होता था कि कच्छ पहनने से आदमी अर्ध-नग्न रहता है, जब कि गांधी जी को देखने वाले मनुष्य तो यही कहते थे कि इससे उनकी सभ्यता की ही झलक मिलती है। उनका कच्छ और उनकी बारीक बुनाई की कास्मिरी शाल सर्दी के सामने अच्छे से अच्छे काटे और सिले हुए कोट-पतलून के इतना ही संरक्षण दे सकती थी।

हमारे किंग्सली हॉल में बकरियों की बात तो रोज के विनोद का विषय हो गयी। 'हमने सुना कि महात्मा जी के खास उपयोग के लिए बकरियों का एक झुण्ड किंग्सली हॉल की छत पर बँधा रहेगा, क्योंकि दुही जाती हुई बकरियों को देखना गांधी जी को बहुत ही पसन्द है!' इसी तरह की मनगढ़न्त और बेवकूफी-भरी बातें अखबारों में आने लगीं। अखबार वालों का आशय ऐसी खबरें देकर गांधीजी को अहंकारी, रँगीला और अद्भुत आदमी साबित करना था। पर वास्तव में हमने तो यही देखा कि उन्हें दूध मिले या नींबू, वे हमेशा एक से ही प्रसन्न रहते हैं; और वे जहाँ जाते हैं उसी देश की चीजों का उपयोग करने की आदत बना लेते हैं। किंग्सली हॉल में भी जब उनके सामने फलों से भरी रकाबी रखी जाती तो पूछते—'इनमें कौन से फल विलायत में ही पके हैं?' और फिर बडे ही उत्साह से उन फलों को उठाकर खाने लगते।

अखबारों ने एक और मनगढ़न्त बात हमें बताई। वह यह कि 'राजपूताना' जहाज़ में गंगा की पवित्र एक टन मिट्टी आ रही है। और वह इसलिये लाई जा रही है कि हिन्दू नेता जब तक लन्दन में रहें, तब तक आस्तिक लोगों को आश्वासन देने के लिए इस मिट्टी से मूर्तियाँ बनाई जा सकें!!

अखबारों में आनेवाली इन परियों की-सी कहानियों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश-पत्रकारों में कल्पना-शक्ति का अभाव नहीं है। इसकी सार्थकता के लिए यहाँ एक पैम्फलेट दिया जाता है, जो उन्होंने लन्दन के पूर्वी भाग में उस समय कसरत से बाँटे थे।

No. 626

मजदूरों का कट्टर शत्रु ?

"गांधी जो एक संत और पवित्र पुरुष होने का ढोंग करता है, उसका भारत के राजे-महाराजे, ज़मींदार और पूंजीपति अपने प्रपंची गुमाश्ते का-सा उपयोग करते हैं। वे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से अपनी मित्रता दृढ़ करने और भारतीय-पूंजीपतियों के लिए अधिक हक प्राप्त करने के लिए यहाँ आ रहे हैं। उनकी सारी ज़िन्दगी छल-कपट करने में ही कटी है। उन्होंने हमेशा अहिंसक होने का ढोंग किया और ब्रिटिश-पूंजीपतियों की तमाम हिंसा भरी लड़ाइयों में सक्रिय भाग लिया है।......यही गांधी, लन्दन के पूर्वी भाग में स्थित किंग्सली हॉल में मित्र और मेहमान की तरह रहकर ब्रिटिश-मजदूरों की आँखों में धूल झोंकना चाह रहा है। इस तरह वह मज़दूरों का मित्र होने का ढोंगकर रहा है, पर वास्तव में तो वह भारतीय-मज़दूर और किसानों का कट्टर शत्रु है।......कमीज न पहनना, शाक भाजी न खाना और बकरी के दूध पर आश्रित रहना, उनकी नाटकीय कलाबाज़ी है और इन कलाबाज़ियों से यहाँ के मज़दूरों को संभलना चाहिए इन चालबाजियों से वे पूर्व के पूंजीपतियों का स्वार्थ साधना चाहते हैं।

'चिल्ड्रन्स न्यूज़ पेपर' ने उन दिनों गांधीजी का उपनाम 'बबूचक' रखा था। इस नाम को पढ़कर बच्चों के माँ-बापों को शायद बहुत ही सन्तोष हुआ होगा!

'ट्रुथ' नामक पत्र ने अपने नाम के ठीक विपरीत गांधीजी को 'पाखंडी' की उपाधि से सुशोभित किया था, और एक पाठक ने एक जगह की दावत में इसका बाक़ायदा प्रचार भी किया।

मैं समझती हूँ उन दिनों लोगों ने इन सभी अखबारों को बड़े ही ध्यान से पढ़ा होगा; इसी कारण जब लोगों ने सुना कि गांधीजी लन्दन आ रहे हैं, तो उनमें घबराहट हो गई थी।

मेरी डाक में अब अजीब-अजीब पत्र आने लगे,—"...देश प्रेमी के नाते आप इस आदमी को अपने यहाँ कैसे ठहरा सकती हैं। अगर आप ऐसा करेंगी तो यह बड़े ही शर्म की बात होगी।" "...आपको देश-निकाला देना चाहिए।" "मैं यह

कल्पना नहीं कर सकता कि एक अँग्रेज़ महिला अपने यहाँ एक नग्न भारतीय को ठहराने का विचार ही कैसे कर सकती है ?" एक पत्र की शुरुआत यूं थी,—'अफ़सोस ! ! गांधी जैसे वृद्ध असुर को आप अपने यहाँ कैसे ठहरा सकती हैं। आप एक अँग्रेज महिला होकर ऐसा विचार रखती हैं ?······काले मनुष्यों को तो अपनी स्थिति का पूरा-पूरा ख्याल होना चाहिए।"

इसमें कोई शक नहीं कि इन दिनों ऐसे पत्रों के साथ-साथ बहुत से अपरिचित लोगों के आनन्द-दायक पत्र भी हमारे पास आये थे। इनमें गांधीजी को ठहरने का निमंत्रण देने की प्रशसा की गई थी। एक पत्र एक मशहूर अँग्रेज़ लेखक का आया था। इस पत्र के साथ गांधीजी के आतिथ्य के लिए दान-स्वरूप पचास पौण्ड का एक चैक भी नत्थी किया हुआ था, यद्यपि गांधीजी का खर्च तो इतना होने भी न पाया था।

हमें लंकाशायर की कपड़े की मिल के एक मज़दूर का पत्र बहुत अच्छा लगा। उसका मुख्य भाग यहाँ दे रहे हैं :—

१८—स्ट्रीट, एक्रिंगटन, लंकाशायर
१, जुलाई, १९३१

"मुझे विश्वास है कि आप मुझे इस पत्र लिखने की धृष्टता के लिए क्षमा करेंगी। आप जब इसे ध्यान से पढ़ जायेंगी तब आप समझ सकेंगी कि मैं अपने मानव-बन्धुओं की कुछ सेवा करने का सच्चा और हार्दिक प्रयत्न कर रहा हूँ। अखबारों की खबरों से मैं यह समझता हूँ कि भारतीय-जनता के प्रतिनिधि मि० गांधी संभवतः आपके यहाँ ही उतरेंगे। साथ ही साथ मैं सच्चे हृदय से आशा ही नहीं विश्वास भी करता हूँ कि मि० गांधी लंकाशायर के बड़े से बड़े स्थान ब्लेकबर्न की मुलाकात के लिए अपने कीमती वक्त में से थोड़ा न थोड़ा समय अवश्य निकालेंगे। मैं लंकाशायर के सूत के उद्योग पर आजीविका चलाने वाला एक मज़दूर हूँ। मेरे जैसे और भी अनेक मज़दूर हैं, जिनके निर्वाह का साधन एक मात्र यही है। मि० गांधी यदि लंकाशायर की मुलाकात के लिए आयेंगे तो

उन्हें बहुत खुशी होगी ; क्योंकि मैं समझता हूँ कि लंकाशायर के मज़दूरों और भारत के मज़दूरों की परस्पर लाभ की कुछ बात इस मुलाकात से अवश्य निकलेगी। लंकाशायर के सूती कपड़े के 'आर्थिक-बहिष्कार' का लंकाशायर के मजदूर वर्ग के 'आर्थिक जीवन-स्तर' पर बहुत ही गंभीर असर हो रहा है।......मैं खुद को क्या भारतीय-कांग्रेस के नेताओं की कार्यवाही के कारण बरबाद हुआ लंकाशायर का एक मज़दूर कहूँ ?...मेरे हृदय में गांधीजी के प्रति बहुत ही प्रशंसा के भाव हैं। मेरे अन्य लंकाशायर के मज़दूर-भाई भी उनके प्रति इसी तरह के भाव रखते हैं। हम भारतीय मज़दूरों के आर्थिक जीवन-स्तर को ऊँचे से ऊँचा देखने के लिए बहुत ही आतुर हैं। मि० गांधी इस स्तुत्य प्रयत्न में शीघ्र सफल हों, इसके लिए हम यथाशक्ति उन्हें मदद देने के लिए उत्सुक हैं। मैं समझता हूँ भारतीय-मजदूरों की आर्थिक स्थिति को सुधारना और लंकाशायर के सूती कपड़े के बहिष्कार का विचार छोड़ना मि० गांधी और उनके भारतीय साथियों के लिए साथ-साथ संभव हो सकता है, क्योंकि लंकाशायर मिलों का मुल्क है, उसे खेती का मुल्क नहीं बनाया जा सकता। इसलिए लंकाशायर के मज़दूर या तो सूती कपड़ा बना सकते हैं या वे कायम के लिये आर्थिक-दुर्दशा के शिकार हो सकते हैं।

निवेदकः—

अ० ब०

पुनश्च :—आप इस पत्र को यदि मि० गांधी को बतायँगी तो मैं आपका आभारी हूँगा क्योंकि मैं उनसे एक दिन मिलकर बात-चीत करना चाहता हूँ।

निम्न उद्धरण उस समय स्व० महादेव देसाई ने भारत के एक साप्ताहिक पत्र को भेजा था, वह यहाँ पत्रकारों के करिश्मों का अच्छा उदाहरण साबित होगा:—

जिस समय मार्सेल्स के विद्यार्थियों ने गान्धीजी का स्वागत किया उस समय 'राजपूताना' जहाज पर गान्धीजी की मुलाकात लेने वाला 'डेली मेल' का प्रतिनिधि भी वहीं मौजूद था ; पर उसने जब पत्र को तार भेजे तब गान्धीजी के उद्गारों का जानबूझकर उल्टा अर्थ किया। बहुत सी बातें तो सफ़ेद झूठ ही थीं। जिस स्पेशल गाड़ी में हम लोग मार्सेल्स से बुलाँ गये, उसमें गान्धीजी ने उसे खूब

फटकारा। उसने लिखा था कि उपर्युक्त स्वागत बागी विद्यार्थियों ने किया था। पर सच बात तो यह थी कि यह केवल मार्सेल्स के विद्यार्थियों द्वारा ही आयोजित था। मार्सेल्स में दिये गये भाषण का एक वाक्य भी उद्धृत किये बिना उसने लिखा था कि गान्धीजी ने ब्रिटिश राज्य के प्रति घृणा का प्रचार किया। इसके समर्थन में जब उसे एक भी शब्द बताने की चुनौती दी गई, तब अपना व्यर्थ बचाव करते हुए वह बोला,—'आपने इस प्रसङ्ग में राजनीति का जिक्र किया, यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।' गान्धीजी ने कहा,—'आपको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि मैं अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तु को भी राजनीति से पृथक नहीं रख सकता। और इसका एक मात्र साधारण कारण यही है कि मेरी राजनीति दूषित नहीं, वह तो अहिंसा और सत्य से ओतप्रोत है। मैंने अनेक बार कहा है कि असत्य से स्वतन्त्रता लेने की अपेक्षा भारत का पायमाल हो जाना अधिक अच्छा है।' उसके अनेक अनुचित कटाक्ष थे, जिनका वह समर्थन नहीं कर सका। उस बिचारे पर दया आती है। गान्धीजी उसे ऐसा आड़े हाथों लेंगे, यह उसे स्वप्न में भी ख्याल नहीं था। गान्धीजी ने कहा,—'मिस्टर, आप सत्य की आड़ में झूठ का पहाड़ खड़ा करते हैं।' मार्सेल्स में जब गान्धीजी को सभास्थल पर ले जाया जा रहा था तब लोगों की भीड़ देखकर हमें बहुत आश्चर्य हुआ, पर 'डेली मेल' के सम्वाददाता ने लिखा,—'अच्छा स्वागत न होने के कारण गान्धीजी निराश हो गये।' इस पर गान्धीजी ने कहा,—'आपने कैसे जाना कि मैं निराश हो गया? और उस ब्रिटिश कर्नल ने जब मुझे 'स्त्री का एक ढाँचा' दिया था, तब मुझे बहुत हँसी आई; इस पर भी आपने लिखा कि मैं चिढ़ गया था?' उसके पास कुछ उत्तर ही न था, फिर भी उसने कहा,—'हँसी का मतलब चिढ़ ही तो है।' गान्धीजी ने कहा,—'सुनो। मुझ में विनोद करने और समझने की बुद्धि है, इसीलिए मैं जल्दी नाराज़ नहीं होता। यह अगर मुझ में न होता तो मैं कभी का पागल हो गया होता। मैं यह दावे से कहता हूँ कि तुमने अपने लेख में अत्यन्त झूठी बातें लिखी हैं, और इसीलिए मैं तुम्हारे साथ सम्बन्ध नहीं रखता तो !! पर मैं ऐसा नहीं करता; आप जितनी बार आयेंगे उतनी बार मैं आपसे मिलूँगा।' इस फटकार से

वह घबराया तो ज़रूर; पर उसके चेहरे पर पश्चात्ताप का एक भी चिह्न नज़र नहीं आया।

परन्तु मालूम होता है इस अखबारी दुनिया में सत्य असम्भव ही होता है। मशहूर पत्रकार भी झूठी बातों को प्रकाशित न करने की अभिलाषा को लेश मात्र रोक नहीं सकते। अतः सत्य बातों में भी वे नमक-मिर्च मिलाने से नहीं चूकते। उदाहरणतः अमेरिकन एसोशियेटेड प्रेस के प्रतिनिधि मि० मिल्स बहुत समय से हमारे साथ थे, और वे यह अच्छी तरह जानते थे कि गांधीजी को क्या क्या पसन्द है, तो भी उनसे गांधीजी के जहाजी-जीवन की बातों में नमक-मिर्च मिलाये बिना न रहा गया। उन्होंने प्रार्थना के समय का दृश्य, चर्खे का आकर्षण और अन्य अनेक बातों का वर्णन किया; पर तो भी उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि शाम को गांधीजी के दूध में हिस्सा बटानेवाली बिल्ली बिना किसी जादू के नहीं आती! इसी तरह गांधीजी की यरवदा जेल की मुलाकात का सनसनीदार वर्णन लिख कर प्रसिद्ध होने वाले मि० स्लोकंब ने भी 'ईवनिंग-स्टेण्डर्ड' में गांधीजी की उदारता की बहुत ही प्रशंसा की। परन्तु किसी योग्य उदाहरण के बिना चित्र अधूरा देखकर उन्होंने अपनी कल्पना की मदद से यह लिख डाला कि जब सन् १९२१ में प्रिंस आफ वेल्स भारत आए थे, तब गांधीजी ने उन्हें दण्डवत किया था। इस पर गांधीजी ने कहा—'मि० स्लोकंब, आपको तो मैं औरों से अधिक विद्वान समझता था। परन्तु यह तो आपकी कल्पना को भी लजा देनेवाली बात है। मैं तो भारत के गरीब से गरीब हरिजन को दण्डवत प्रणाम कर सकता हूँ क्योंकि सदियों से उन्हें कुचलने में भाग लिया, इसके प्रायश्चित्त-स्वरूप उनकी चरण-रज भी मैं अपने सिर पर चढ़ा सकता हूँ। पर जब मैं छोटे-से-छोटे राजा को भी प्रणाम नहीं करता, तो सम्राट् की तो बात ही कहाँ? मेरे शरीर को भले ही हाथी कुचले तो कुचलने दूँ, पर इन उद्धत पशुबल के प्रतिनिधियों को तो मैं कभी दण्डवत नहीं करूँगा।'

गांधीजी और रेडियो

(३)

गांधी जी जिस दिन लन्दन पहुँचे उस दिन दोपहर को युस्टन रोड पर लोगों की खासी भीड़ घण्टों से खड़ी थी। स्वागत सभा की जगह फ्रेण्ड्स हाउस को लोगों ने घेर रखा था। केनिंग हाउस में रहनेवाले मेरे भारतीय पड़ोसी डा० कतियाल मुझे अपनी मोटर में यहाँ ले आये थे। उन्होंने यह भी कहा था कि गांधीजी जब तक यहाँ रहें तबतक वे मेरी मोटर का उपयोग कर सकते हैं। सभास्थल के प्रवेश द्वार तक पहुँचना मुश्किल हो गया। जिन्हें प्रवेश की टिकिटें नहीं मिलीं थी उनकी उत्सुकता का तो कोई पार ही नहीं था। मकान के अन्दर के भाग तक आने-जाने के लिये छोड़ी हुई जगह में और प्रवेश-द्वार के आस-पास गांधी जी के निजी मित्रों का एक छोटा-सा समूह उनकी राह देखता हुआ खड़ा था। कुछ मित्र जो गांधीजी को दक्षिण-अफ्रिका में मिले थे, उनके मन में इस तरह का संघर्ष चल रहा था—'इतने लम्बे अर्से में गांधीजी भी बदल गये होंगे और हम लोगों में भी काफी परिवर्तन हो गया होगा, ऐसी हालत में क्या हम एक दूसरे को पहचान सकेंगे?'

आखिर, दरवाजे पर हलचल हुई। एक छोटा आदमी और उसके पीछे एक ऊँचा, गौरवशील ब्राह्मण सभागृह की तीन सीढ़ियों तक चढ़ा। मि० लारेन्स हाउसमेन गांधीजी का स्वागत करने के लिए आगे बढ़े। एक क्षण के लिए सारे सभागृह में संतोष का भाव व्याप्त हो गया। इसके बाद सभी ठहर गये। आगे जाने के लिये कशमकश न करने की इच्छा से हम जहाँ थे वहीं रहे; हरेक आदमी दूसरे को सम्मान देने लगा। गांधी जी मुस्कुराते, आनन्दातिरेक से, इस दृश्य को देखते शान्त खड़े रहे।

किसी ने कहा,—'यह भी आपके एक मित्र हैं।' और इसी शब्द ने मानो हमारा मौन भंग किया।

गांधीजी ने कहा,—'ओ-हो !!' और उनसे हाथ मिलाया।

अब चारों ओर से स्वागत के मधुर शब्द सुनाई देने लगे। गांधीजी को भोजन के लिये कहा गया, पर उन्होंने इतने अधिक मानव-समुदाय को इन्तज़ार में रखना उचित न समझा।

हम लोग पंक्ति में सीढ़ियाँ चढ़ कर व्यास-पीठ पर पहुँचे। जब गांधीजी अपने अंग्रेज़ प्रशंसकों के सामने मुँह करके खड़े हुए तब सभा-गृह हर्षनाद से गूँज उठा।

मि० लॅारेन्स हाउसमेन ने सुन्दर और छोटे भाषण द्वारा गांधीजी का स्वागत किया। उन्होंने कहा,—'हम आपका स्वागत करते हैं। जो चीज़ सामान्यतः समझ में नहीं आती—उस राजनीति और धर्म का एकीकरण आपने ही किया है। हम मन्दिरों में अपने को पापी कहते हैं; परन्तु राजनीति में हम अपने सिवाय और सब को पापी समझते हैं—यही है हमारे दैनिक जीवन का सच्चा वर्णन। आप हमें अन्तःकरण की शुद्धि का रास्ता और सच्चा धर्म बताने के लिए यहाँ आये हैं। आप दुनिया के विरले पुरुष हैं। जिस तरह भारत में भी आपको बहुत-से लोग नहीं जानते, उसी तरह मेरे देश के लोग भी आपको बहुत कम जानते हैं। आप इतने सत्य-निष्ठ हैं कि हममें से बहुतों को उस पर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। आपकी सादगी को देखकर हम में से बहुत-से लोग द्विविधा में पड़ जाते हैं।'

हम जब लन्दन के पूर्वी भाग की ओर चले तब मूसलाधार बारिश हो रही थी; तो भी बो में गांधीजी का स्वागत करने के लिए किंग्सली हॅाल के अन्दर और बाहर लोगों की भीड़ जमा थी। इस भाग के मेयर (नगर-पिता), सुधराई विभाग के सदस्य, पादरी, उपदेशक और शिक्षक, डाक्टर और वकील, मज़दूर, माता, पड़ोसी और मित्र तथा किंग्सली हाल के हरेक विभाग में काम करनेवाले आश्रम-वासी, सभी वहाँ खड़े हुए थे। नीचे के उपासना-मन्दिर में क्या, ऊपर के सभागृह और वाचनालय में क्या, सभी जगह गांधीजी को प्रफुल्लित चेहरे नजर आए। ये लोग दो-तीन घण्टे से धीरज के साथ इन्तजार कर रहे थे। इनका स्वागत पाने के बाद

गांधीजी झरोखे में खड़े हो गए और नीचे खड़ी हुई जनता को अभिवादन किया। इसके बाद कुछ देर उन्हें शान्ति से बैठने की फुरसत मिली। हम लोग छत पर गये। गांधीजी तथा उनके साथियों के लिए पाँच कमरे तय किये गये थे। सामान ऊपर लाया गया, भोजन परोसा गया और सात बजे सब लोग प्रार्थना के लिए बैठ गये।

प्रार्थना के बाद लन्दन के पश्चिम भाग से आए हुए पत्रकारों और मुलाकातियों की भीड़ लग गई। इन लोगों का आना-जाना दिसम्बर तक चलता रहा।

रविवार को—गांधीजी के आने के दूसरे ही दिन—वे शाम को पौने छः बजे ही भोजन कर लें ऐसी व्यवस्था की गई थी; जिससे कि वे साढ़े छः बजे अमेरिका को सम्बोधित कर रेडियो पर भाषण दे सकें। परन्तु सारा दिन मुलाकातियों के आने-जाने में ही निकल गया और फिर भी मुलाकातियों का प्रवाह चलता हो रहा और उसका अन्त कहीं नजर ही नहीं आ रहा था। अन्त में जब उन्होंने नारंगी और अंगूर खाना शुरू किये—उन्हें इसमें काफी समय लग जाता है—तब भी उनके आस-पास मित्रों का जमघट था और वे निश्चिन्त होकर बातें कर रहे थे। छः बज कर दस मिनट होते ही मैंने गांधीजी को सूचना दी कि समय हो गया है; पर इस खबर का उन पर जरा भी असर नज़र नहीं आया।

रेडियो द्वारा समाचार देने से जिन लोगों का स्वार्थ पूरा होने वाला था, वे लोग खूब स्पर्धा और कशमकश कर रहे थे। सिनेमा कम्पनी वालों को उस समय अत्यन्त निराशा हुई जब गांधीजी ने फोटो उतरवाने के लिए न तो खड़ा होना मंजूर किया और न बैठना ही। ग्रामोफोन कम्पनी वाले भी कुछ कम झगड़ा नहीं कर रहे थे। इन्हीं कारणों से रेडियो पर के गांधीजी के भाषण का समय बार-बार बदलना पड़ा था ; साथ-साथ भाषण के समय जिन लोगों को दीवानखाने में बैठने की इजाज़त दी गई थी उनके नामों में भी अनेक बार परिवर्तन करना पड़ा था। रेडियो पर गांधीजी का परिचय कौन कराये, इसके बारे में भी अनेक निश्चय बदल चुके थे। पहले ऐसा तय हुआ था कि रेडियो कम्पनी का ही कोई अमेरिकन परिचय दे। बाद में मुझसे कहा गया,—'आप पाँच मिनट में अमेरिकन श्रोताओं को इनका

परिचय देंगी और साथ-साथ किंग्सली-हॉल का भी कुछ वर्णन करेंगी।' परन्तु उनका आखिर का निर्णय यह था कि कम्पनी का ही कोई आदमी एक-दो प्रास्ताविक शब्दों द्वारा परिचय करा दे तो बहुत है।

छः बजकर बीस मिनट हो गए ; हमारा एक आश्रम-वासी गांधीजी को तैयार करने के लिए आया। किंतु वे तो अब भी मित्रों के साथ विनोद कर रहे थे, और यह स्पष्ट ज़ाहिर हो रहा था कि उन्हें अपने आसपास के वातावरण के अलावा और किसी चीज़ में जरा भी दिलचस्पी नहीं है। नीचे रेडियोवाले जल्दी मचा रहे थे। उन्हें शांत करने के पहले मैंने गांधीजी को यह बताने की कोशिश की कि वायु बहुत कीमती है और उनके भाषण का महत्व भी बहुत अधिक है। छः बजकर अट्ठाईस मिनट पर मैंने कहा,—'बापू! हवा आपकी राह न देखेगी। पर उन्हें यह निश्चय था कि वह राह ज़रूर देखेगी। और देखे भी क्यों न ? क्योंकि शायद यही एक ऐसी वस्तु थी जो बापू की तरह स्वस्थता, बिना जल्दबाजी के और अपनी शान्ति को जरा भी डिगाये बिना, इन्तजार कर सकती है, करती है और आगे भी करेगी। इश्तिहारबाज इसकी जितनी कीमत करते हैं, उतनी स्वयं इसे अपनी कीमत नहीं है।

नीचे तो वास्तव में शारीरिक बल का मुकाबला हो रहा था। जिन संवाद-दाताओं के पास अन्दर आने के पास नहीं थे, वे झूठ बोलकर हमारे दीवानखाने में घुसने की कोशिश कर रहे थे; पर दरवाजे पर बैठे मनुष्यों की स्थिर शान्ति उन्हें घुसने नहीं दे रही थी। मैं बेचैन हो गई, सुबह के कार्यक्रम के मुताबिक मेरा पाँच मिनट का भाषण रखा था; अतः मैंने उसके लिए जैसे-तैसे नोट ले लिए थे। इन्हें लेकर मैं दीवानखाने में दाखिल हुई।

दीवानखाने में जिन लोगों की भीड़ थी, उनके चेहरे पर मन के तरह-तरह के भावों को देखकर मुझे अत्यन्त कौतूहल हुआ। जो लोग गांधीजी के अमेरिका के प्रति दिये जाने वाले इस भाषण से ढेरों पैसे कमाना चाहते थे, वे गम्भीर और बोझिल नजर आ रहे थे। अखबारों के प्रतिनिधियों के चेहरों पर सन्तोष का भाव स्पष्ट दिख रहा था। रेडियो की मशीन चलानेवाले कुशल इंजीनियर

बटन, तार, गरारियाँ, बत्ती और सिग्नलों की तरफ ध्यान देने में मशगूल हो गये थे।

इन्होंने मेरे पीछे मेरे मान्य अतिथि को देखने के लिये नजरें फेंकीं—मुझसे हँसी नहीं रुकी; मैंने धीरे से कहा,—'वे तो अभी भोजन कर रहे हैं, क्योंकि रेडियो चलानेवालों को उसी क्षण बत्ती की निशानी से मालूम पड़ गया था कि अमेरिका और हमारे दीवानखाने के बीच रेडियो द्वारा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। रेडियो के स्टूडियो में आदमी को बड़ी-से-बड़ी महत्व की बात भी भौंहें चढ़ाकर ही कहने की आदत पड़ जाती है; अतः एक दूसरे के विचार समझने में दिक्क़त नहीं होती। दीवानखाने से एक आदमी की आवाज़ एटलांटिक पार करके अमेरिका पहुँची:—

'मैं पूर्वीय लन्दन के बो मुहल्ले में स्थित किंग्सली हाल से बोल रहा हूँ। मि० गांधी कल यहाँ आ गये हैं। रेडियो (ध्वनि-प्रसारक यंत्र) के सामने मिस लिस्टर बैठी हैं, उन्हीं के यहाँ मि० गांधी उतरे हैं; अमरिका के संयुक्त-राष्ट्र के श्रोताओं को उनका परिचय कराते मुझे बड़ी खुशी हो रही है।'

यह तो मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे नोट बहुत ही अधूरे थे और गांधीजी के भोजन खत्म करने तक मुझे कितना बोलना होगा, इसका मुझे अन्दाज़ तक न था। परन्तु ये सब विचार व्यर्थ थे। मेरा काम तो सिर्फ अमेरिकनों को अपने प्रिय आश्रम किंग्सली हाल का परिचय कराकर यह बताना था कि मि० गांधी ने अन्य जगहों की अपेक्षा इसे क्यों पसन्द किया है? मैं ज्यों ही अपने छठे पृष्ठ की शुरुआत पर आई, त्योंही साढ़े चार मिनट बीत गये। इतने में मैंने अपने आँख के कोने से देख लिया कि दरवाजा खुला, और देखा कि नाटक के नायक स्वस्थता से प्रवेश कर रहे हैं—मानो पूर्व-रचित योजनानुसार ही ठीक समय पर आ गये हों। उनकी मुखमुद्रा पर ऐसी निर्दोषता का भाव था कि उसपर किसी भी तरह के बुरे हेतु का आरोप हो ही नहीं सकता। बोलना बन्द करते ही मैं तुरन्त कुरसी पर से उठी, और वे निश्चिन्त हो उसपर, पैर पर पैर रखकर, लम्बे भाषण की तैयारी करके बैठ गये। गांधीजी के परिचय का आखिरी शब्द बोलते ही मैंने ध्वनि-प्रसारक यंत्र उनकी तरफ मोड़ दिया था जिसे उन्होंने जरा हलके हाथ से छुआ।

उन्होंने धीमी आवाज़ से पूछा,--'मुझे इसमें बोलना है ?' पर उनकी यह आवाज़ तो केलिफोर्निया तक पहुँच गई। अतः सब जगह शान्ति छा गई। गांधीजी ने आँख बन्द करके सिर झुकाया। ऐसा लगा मानो वे अंतर्मुख हो रहे हों—मानो उन्होंने अपनी सारी शक्ति संगठित कर दी, जिससे कि परमात्मा उनसे काम ले सकें। उन्होंने भाषण शुरू किया :—

'मेरा ऐसा निश्चित अभिप्राय है कि इस भारतीय परिषद के परिणाम के साथ सिर्फ भारत का ही नहीं, अपितु सारे संसार का संबंध है। भारत एक बहुत बड़ा भू-खण्ड है। इसमें मनुष्य जाति का पाँचवाँ हिस्सा आबाद है। उसके पास संसार की प्राचीन-से-प्राचीन संस्कृति है। उसके रीति-रिवाज लगभग दस हज़ार वर्ष से चले आ रहे हैं; और यह देखकर तो दुनिया आश्चर्य में पड़ जाती है कि उनमें से कितनी ही रस्में यथापूर्व अखण्डित हैं। यह सच है कि समय के परिवर्तन ने उनकी शुद्धता पर असर डाला है। काल का ऐसा ही प्रभाव दुनिया की अन्य कितनी ही संस्कृतियों और संस्थाओं पर पड़ा है।

भारत को अपने प्राचीन भूतकाल की कीर्त्ति के गौरव को कायम रखना तभी संभव हो सकता है, जब कि वह अपनी स्वतन्त्रता हासिल कर ले। हमारे हाल के स्वतन्त्रता-संग्राम (१९३०-३१ का) पर सारी दुनिया का ध्यान आकर्षित हुआ है, इसका कारण सिर्फ यह नहीं कि हम अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं; अपितु इसका असली कारण यह है कि हमने जो साधन इस लड़ाई के लिए अख्तियार किया है, वह आज तक इतिहास में किसी भी प्रजा ने स्वीकार नहीं किया। हमारे इस साधन में हिंसा नहीं, खून-खराबी नहीं और आज की दुनिया में खेली जानेवाली कूटनीति भी नहीं! उसमें तो केवल शुद्ध सत्य और अहिंसा ही है। इस खून-खच्चर से रहित क्रान्ति के प्रयत्न पर यदि दुनिया का ध्यान आकर्षित हो तो आश्चर्य ही क्या? आधुनिक देशों की जनता पशुओं की तरह लड़ती आ रही है। उसने जिसे अपना 'शत्रु' माना, उससे जरूर बदला लिया।

संसार के समर्थ देशों ने अब तक जो राष्ट्र-गीत बनाये हैं, उन्हें देखने से

यही जाहिर होता है कि उनमें 'शत्रु' के प्रति अभिशापों की भरमार है। इन्हीं देशों ने शत्रु के विनाश करने की प्रतिज्ञा ली और इस कार्य में भगवान का नाम लेकर उससे मदद भी माँगी। भारत में हमने इससे ठीक विपरीत कार्य किया है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मानव-निर्मित सृष्टि में जो नियम चल रहे हैं, उन्हीं नियमों का मनुष्य अनुसरण करे, यह उचित नहीं। इन नियमों का मनुष्य के गौरव के साथ कोई मेल नहीं खाता।

मैं स्वयं अपने देश को हिंसा द्वारा स्वतंत्र करने की अपेक्षा जमानों तक इन्तज़ार करना अधिक पसन्द करूँगा। करीब पच्चीस वर्ष के राजनीति के अनुभव से मेरे हृदय के अन्तरतम भाग में यह महसूस हो रहा है कि दुनिया इन हिंसक युद्धों से हाय-तौबा कर उठी है, और इन युद्धों से निकल भागने का रास्ता भी वह खोज रही है। और इसीलिए यहाँ यह कहते हुए मेरी छाती फूली नहीं समा रही है कि इस आतुर और त्रस्त दुनिया को सही राह बताने का आनन्दोल्लास भारतवर्ष की प्राचीन भूमि को ही मिलेगा।

इसीलिए भारत की आज़ादी की लड़ाई में मुझे संसार की जातियों को आमंत्रित करते हुए ज़रा भी संकोच नहीं होता। अपने राष्ट्र के गौरव और सम्मान की रक्षा करने के हेतु भारत के करोड़ों लोगों ने प्रत्याक्रमण किये बिना ही स्वयं कष्ट सहने की प्रवृत्ति अख्तियार कर ली है। यह दृश्य विचारने योग्य और हृदयंगम करने जैसा है।

मैं इस कष्ट-सहन को आत्म-शुद्धि कहता हूँ। मुझे तो पूरा विश्वास है कि मनुष्य अपनी आज़ादी अपनी कमज़ोरी से ही खोता है। मुझे अपनी कमज़ोरियों का दुःखद अनुभव है। भारत में हम संसार के सभी धर्मों के प्रतिनिधि रहते हैं। हमारे यहाँ आपस के अनेक झगड़े हैं, और हिन्दू-मुस्लिम दंगे अकसर होते रहते हैं, यह स्वीकार करते हुए मुझे अत्यन्त ग्लानि होती है। हम हिन्दू लोग अपने करोड़ों हिन्दू भाइयों को अस्पृश्य समझते हैं, यह चीज़ मुझे सबसे अधिक खटकती है। मैं यहाँ अछूतों की बात कर रहा हूँ।

जो प्रजा अपनी स्वतन्त्रता के लिए जद्दो-जहद कर रही हो, उसमें ये कम-

जोरियाँ छोटी-मोटी नहीं कही जा सकतीं। आप देखेंगे कि इस आत्म-शुद्धि की लड़ाई में हमने इस अस्पृश्यता-निवारण तथा भारत के भिन्न-भिन्न धर्मों, वर्गों और कौमों में एकता स्थापित करने के काम को पहला स्थान दिया है।

इसी तरह हम शराब तथा उससे होनेवाली बुराइयों को दूर करना चाहते हैं। हमारे सद्भाग्य से हमारे देश में शराब और अफीम जैसी नशीली चीजें लोग बहुत ही कम सेवन करते हैं--ज्यादातर मिल-मजदूर आदि। सद्भाग्य से शराब की बुराइयों को यहाँ सबसे ज्यादा खराब भी समझा जाता है। शराब पीना या अफीम खाना हमारे यहाँ फैशन नहीं समझा जाता। फिर भी हमें अपने देश से इन बुराइयों को दूर करने में अनेक मुसीबतों के पहाड़ लाँघने पड़ेंगे।

यहाँ यह कहते मुझे अत्यन्त दुःख होता है कि इन नशीली चीज़ों से सरकार ने सालाना अपनी पच्चीस करोड़ की आमदनी कर रखी है। परन्तु साथ ही, मैं यहाँ कृतज्ञतापूर्वक यह भी कह सकता हूँ कि भारतीय स्त्रियों ने इन बुराइयों को दूर करने का बीड़ा उठाया है। जिन लोगों को शराब का व्यसन है, उन लोगों को तथा शराब के व्यापारियों को वे स्त्रियाँ अनुनय-विनय कर मनाती हैं। जिन लोगों को शराब और अफीम की लत है, उन पर इसका बहुत असर पड़ रहा है।

मुझे उस समय बहुत ही खुशी होती, यदि कम-से-कम इस कार्य में हमें राज्य के कर्मचारियों का सहयोग मिलता। यदि इस कार्य में हमें एक मात्र उनकी ही मदद मिली होती तो मैं यह डंके की चोट पर कह सकता हूँ कि इन बुराइयों को हम बिना किसी कानून-कायदे के नेस्तनाबूद कर शराब और अफीम को हमेशा के लिए देश-निकाला देने में समर्थ हो सकते थे।

एक और चीज है, जिसके लिए इस आन्दोलन के दिनों में भारतीय जनता ने स्तुत्य प्रयत्न किया है, इसका आधार भी रचनात्मक कार्यक्रम ही है। यह कार्यक्रम उन गाँवों की भूखी-नङ्गी जनता की सेवा करने का था, जो इस १,९००० मील लम्बे और १,५०० मील चौड़े देश में जगह-जगह बिखरी हुई हैं। इन ग्रामवासियों को बिना किसी कसूर के ही साल में छः महीने बेकार रहना पड़ता है। इसकी भी एक दुःखद कहानी है। अभी थोड़े ही दिन पहले ये गाँव अन्न और वस्त्र जैसी

मनुष्य की आवश्यक चीज़ों के बारे में स्वाश्रयी थे। हमारे दुर्भाग्य से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इन ग्रामोद्योगों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इन धन्धों को नष्ट करने में उसने जिन साधनों का उपयोग किया, उनके बारे में चुप्पी साधना ही बेहतर होगा। आधुनिक यन्त्र जितना बारीक सूत आज तक नहीं कात सके हैं, उससे भी अधिक बारीक सूत कातनेवाली करोड़ों मशहूर कत्तिनों ने एक सुबह उठकर देखा कि उनका उम्दा धन्धा नष्ट हो गया है। इसी दिन से भारत में गरीबी का साम्राज्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

यह निर्विवाद सत्य है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कदमपोशी के पहले ये ग्रामीण बेकार नहीं रहते थे। और आज ये ग्रामीण बेकार हैं। जिन्हें देखना हो वे भारत के ग्रामों में जाकर इसकी आजमाइश कर सकते हैं। ये ग्रामीण यदि साल में छः महीने बेकार रहें तो यह निश्चित है कि इन्हें भुखमरी का शिकार होना पड़ेगा, इसे समझने के लिए विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं।

इसीलिए मैं इन करोड़ों भूखे भारतीयों की ओर से संसार की आत्माओं से प्रार्थना करता हूँ कि वे भारतीय जनता की मदद करें, जो अपनी स्वतन्त्रता हासिल करने के लिए जी-तोड़ मेहनत कर रही है।'

इसके बाद हमने अपने अमेरिकन दोस्तों से सुना कि इस आधे घण्टे के सारे व्याख्यान के बीच स्पष्ट और तीक्ष्ण कोलाहल—भूत-प्रेतों का-सा—सुनाई दे रहा था। खोज करने पर मालूम हुआ कि यह आवाज़ तो उन बच्चों की हर्ष-भरी किलकारियाँ थीं, जो दूरस्थ किसी क्रीडांगण में झूला झूलते हुए शोर-शराबा कर रहे थे।

भाषण खत्म होते ही तुरन्त हमारी सांध्य प्रार्थना शुरू हुई। उसमें गांधीजी ने 'प्रार्थना' पर प्रवचन किया। साढ़े आठ बजे वे मोटर में बैठकर पश्चिम-लन्दन में होने वाले एक जलसे में शामिल होने गये। वहाँ उन्हें प्रधान मन्त्री तथा संसार के अन्य अनेक बड़े-बड़े आदमियों से मिलना था।

तारों की रोशनी में

(४)

'मैं समझता हूँ, मुझे भी अब बाहर आने-जाने के लिए मोटर का सहारा लेना पड़ेगा।' यह कहते हुए गांधीजी ने मेरी तरफ प्रश्न-सूचक भाव से देखा। ऐसा मालूम हुआ कि वे यह जानना चाहते थे कि आखिर खराब-से-खराब स्थिति क्या है और उसका अच्छे-से-अच्छा क्या उपयोग हो सकता है। स्वागत-समारोह और मुलाकातियों के एक लम्बे प्रवाह से निकलकर हम लोग अभी-अभी किंग्सली हॉल वापस आये थे। इन मुलाकातों और स्वागत-समारोहों की शुरुआत कैकस्टन में एक बजे शुरू हुई थी, और इस समय साढ़े छः बज रहे थे।

मैंने कहा,-"क्यों नहीं?" यह सुनते ही गांधीजी के चेहरे पर निश्चयात्मक धीरज की जगह एकदम विनोद के चिह्न नज़र आये, इसलिए मुझे भी हँसी आ गई।

उन्होंने फिर कहा,—"मुझे शंका हुई कि ऐसा करने से कहीं जनता या पुलिस के साथ मेरा संघर्ष न हो जाय!"

मैंने जवाब दिया,—"बापू! लोग तो आपका परिचय पाने के लिए उत्सुक रहते हैं, अतः आपको जहाँ जाना होगा वहाँ आप जा सकेंगे। इसमें तो किसी तरह का सन्देह है ही नहीं कि गुप्त-पुलिस तो आपके पीछे लगी ही रहेगी। यह हमारे देश का एक खास रिवाज है। और आपके हिस्से में तो पुलिस के अच्छे-से-अच्छे अधिकारी आये हैं, अतः आपको किसी तरह की दिक्कत न होगी।

दो-एक दिन बाद प्रतिदिन हम लोग सुबह पाँच बजे एक घण्टा घूमने जाने लगे। हमारी चाल बहुत तेज होती थी और हम प्रतिदिन अलग-अलग रास्तों पर जाते थे। बो मुहल्ले में घूमने जाने लायक बहुत कम रास्ते हैं। परन्तु सामान्यतः हमने जो रास्ता चुना था, वह हमें खूब ही जँच गया था। उस समय गांधीजी

नई जगह आते ही लोगों का विशेष ध्यान रखते, और वहीं उनमें तथा सामने से आनेवालों में नमस्कार का आदान-प्रदान होता था। एक छोटे-से घर के पीछे नहर पड़ती है, उसके ऊपर के कमरे में बहुत-सी लड़कियाँ काम करती थीं, वे भी इस समय बिला नागा खिड़की के सामने एकत्र होकर गांधीजी के आते ही अपने हाथों को हिलाकर उनका स्वागत करती थीं। केम्बोल और बिशप कम्पनी के रात को काम करनेवाले लोग गांधीजी को जाते हुए देखते रहते थे। यहाँ तक कि नहर में से कीचड़ निकालनेवाले जहाज-महकमे के मजदूर भी उनका सत्कार करते थे।

तीन महीने तक हम लोग लगातार सुबह एक घण्टा घूमने जाते रहे, और इसमें जो साथ देना चाहता उसे सहर्ष आने देते थे। अतः इस समय अनेक विषयों पर चर्चा होनी आवश्यक-सी थी। घूमने आनेवाले लोग अपने अलग-अलग हेतु से आते थे। कोई कुतूहलवशात्, तो कोई अपनी योजना अथवा अपने सिद्धान्तों पर गांधीजी की राय लेने भी आते थे। कुछ लोग वर्तमान परिस्थिति के उपयोगी मामलों का ज्ञान प्राप्त करने तथा कुछ लोग गांधीजी को अमुक बातों की खबर देने के लिए भी आते थे।

एक बार हम लोग घूमने जा ही रहे थे कि मिड्‌जलैण्ड के मजदूरों के एक छोटे-से समूह ने एक संदेशा भेजा। उन्होंने गांधीजी को नमस्कार कर अपने लिए उनसे सन्देश माँगा था। उसके जवाब में गांधीजी ने कहला भेजा,—"उन लोगों को कहना कि वे इस बात की पूरी-पूरी सावधानी रखें कि वे दूसरों के हाथ से अपना शोषण न होने दें।" इसी विषय में एक और प्रश्न पूछा गया, उसका उत्तर उन्होंने यूँ दिया,—ग्रेट ब्रिटेन यदि हिन्दुस्तान से हाथ धो बैठे तो उसे अपने रहन-सहन में सादगी को अपनाना होगा। ब्रिटेन के आज के रहन-सहन में अनेक कृत्रिम खर्चे हैं, क्योंकि भूतकाल में उसने पिछड़ी हुई जातियों का शोषण किया है। परन्तु यदि वह अपने रहन-सहन के आज के दरजे को कम करेगा, तो भी वह भविष्य में अपना व्यापार ससम्मान करता रहेगा। आज के किसी भी साम्राज्य की इमारत की नींव ईमानदारी पर नहीं रची गई है।"

किसी ने पूछा,--"क्या आप यह बता सकेंगे कि ब्रिटेन की जनता का कौन-सा वर्ग भारत की स्वराज्य-प्राप्ति का अधिक-से-अधिक समर्थन करता है ?"

थोड़ी देर रुककर गांधीजी ने कहा,--"यह कहना कठिन है। परन्तु तो भी मैं यह कह सकता हूँ कि ईसाई-वर्ग; यद्यपि उन्हें यह नहीं मालूम कि भारत की आज़ादी के गर्भ में क्या-क्या बातें छिपी हैं। वे लोग यह भी नहीं जानते कि आखिर यह स्वराज मिलेगा कैसे ?"

किसी ने कहा,—"क्या आपकी दृष्टि में ब्रिटेन का मजदूर-वर्ग भारत की आज़ादी का पूर्ण समर्थन नहीं करता ?"

इसका जवाब भी एक आगन्तुक ने ही दिया,—"मैं जानता हूँ कि मजदूर-वर्ग गुलाम-प्रजा के शोषण का विरोध तो करता है, क्योंकि एक तरह से वे भी गुलाम हैं। परन्तु ऐसा वे भावना-वश ही करते हैं। ज्योंही उन्हें यह महसूस होगा कि भारत के स्वतन्त्र होने से उन्हें कष्ट का सामना करना पड़ेगा, त्योंही उनकी यह आकांक्षा गायब हो जायगी। और उनके कार्य भी अन्य लोगों की तरह ही हो जायँगे।

इस आक्षेप से मजदूरों का बचाव करने के लिए मैंने भी इस चर्चा में भाग लिया। और मैंने अपना यह विश्वास जाहिर किया कि मजदूर स्वभाव से ही न्याय-प्रिय और आत्म-त्याग के प्रेमी होते हैं।

"नहीं जी !" एक अंग्रेज़ निरामिषाहारी बोले--"हमारे पश्चिम के सभी लोग जड़वादी हैं। ये लोग भारत के लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं।"

हममें से से कई एक महाशय अत्यन्त उत्तेजित हो गये और वाद-विवाद शुरू हुआ। गांधीजी ने उन लोगों को शान्त किया और बोले,—"तमाम धर्मों में एक तरह की समानता है। वह स्पष्ट देखी जा सकती है। भिन्न-भिन्न धर्म एक ही हाथ की अँगुलियों के समान हैं। कर्मकाण्ड की विधि, पोशाक, भाषा और रीति-रिवाज़ में फ़र्क जरूर होता है, परन्तु इन गौण चीजों को यदि मैं जड़ से उखाड़ फेंकू, तो मैं यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि मूल में तो सब धर्म एक ही हैं। और वह एक धर्म बहुत ही सीधा-सादा है। एक दिन ऐसा आयेगा जब हम लोग इन सभी भेद-

भावों को भूल जायँगे। या अगर वे रहेंगे, तो भी भिन्न-भिन्न रंगों की तरह वे हमारे लिए आह्लाद-दायक ही होंगे। इन रीति-रिवाजों से हमारे जीवन में जो विविधता उत्पन्न होगी, वह हम सब के लिए खुशी का सन्देश लायेगी। हम लोग एक दूसरे के धर्म और समाज के प्रति परस्पर सहिष्णुता धारण करेंगे। जो लोग धर्मान्ध होकर बेवकूफी-भरी बातें करते हैं, उनके प्रति भी हमें सहिष्णुता से ही काम लेना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम दंगे और ईर्ष्या-द्वेष के प्रति आप लोग बहुत-कुछ सुनते आये हैं, पर आप लोगों को यह शायद मालूम नहीं है कि ये दंगे-फसाद इरादतन शुरू किये जाते हैं। भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के नेताओं के लिए लोगों को एक-दूसरे के प्रति उत्तेजित करना सहल होता है; परन्तु उन लोगों को यह ज्ञात नहीं होता कि जनता में स्वयं सच्चा मेल और संगठन होता है और जब जनता को अपने तथाकथित नेताओं से अलग कर दिया जाता है, तो वह शान्ति और भ्रातृ-भाव से रहती है। हिन्दू और मुसलमान दोनों परस्पर एक-दूसरे के त्योहारों पर निमंत्रण भेजते हैं, और वे मान्य अतिथि की तरह उन त्योहारों में भाग लेते हैं। दोनों कौमों के लोग राजी-खुशी से एक दूसरे की मदद भी करते हैं। मानव-जाति के स्वभाव में कुछ एक जन्मसिद्ध गुण छुपे हुए हैं। अगर ऐसा न होता तो मानव-जाति कभी की नेस्तनाबूद हो गई होती।"

किसी ने फिर पूछा,—"गांधीजी! दुःख से यदि मनुष्य का चरित्र-गठन हो जाता हो तो, इससे क्या यह साबित नहीं होता कि राष्ट्रों को युद्ध की आवश्यकता है?"

गांधीजी,—"मैं कहता हूँ कि यह सिद्धान्त गलत है। दुःख और विपत्ति यदि स्वेच्छा से सहन किये गये हों, तो इससे चरित्र का गठन तो अवश्य होता है, पर यदि वे जबरन लादे गये हों, तो ऐसा नहीं होता। परन्तु अहिंसा का युद्ध सबके लिए एक जैसा लाभदायक है। भूतकाल के युद्धों से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि उनसे मूढ़ता और क्रूरता, थोड़े ही समय में, जन्म लिये बिना नहीं रहती।

किसी ने पूछा,—"क्या आपका भी यही मत है कि दूसरा महायुद्ध किसी भी प्रकार से रोके नहीं रुकेगा?"

गांधीजी ने स्मित-हास्य से और हृदय के सच्चे भाव से उत्तर दिया,--"मैं समझता हूँ, १९०६ से लेकर १९३१ तक के मेरे प्रयोगों की सफलता युद्ध को रोक सकती है। आप लोग शायद यह कहेंगे कि मैं अपने कल्पना के मनोराज्य में विचरता हूँ। इसमें कुछ गलती भी हो सकती है, पर मुझे तो नजर नहीं आती।"

× × ×

बो में इगलिंग रोड नामक एक रास्ता है। उसके किनारे पर एक बाल-मन्दिर है। नवम्बर की एक सुबह गांधीजी ने विचार किया कि इस गली को ढूँढ़ा जाय। गांधीजी जहाँ भी जाते, वहाँ के लोग उन्हें आते देखकर दौड़-धूप करने लगते। हम इगलिंग रोड की तरफ़ मुड़े तो लोगों का जमघट हमारे साथ हो लिया। गांधीजी रास्ते के दोनों तरफ़ के घरों में जाकर देखने लगे। उन घरों की स्त्रियाँ तो गर्व से फूली नहीं समाईं। उन्हें स्वप्न में भी ख्याल न था कि गांधीजी उनके घरों को देखने आनेवाले हैं। उनमें से कुछ स्त्रियाँ कपड़ों पर इस्तरी कर रही थीं, कुछ साफ-सफाई में लगी थीं; पर गांधीजी के आते ही उन्होंने अपने गृहराज्य का एक-एक कोना उन्हें जाँचने दिया, सवालों का जवाब दिया और उन्होंने जो प्रशंसा की उसे ध्यान से सुना भी। आस-पास के लोग क्या काम करते हैं, घर का किराया क्या है, सरकारी महकमे के लोग गटर और रास्ते की सफाई कैसी करते हैं, बेकारी में परिवार की गुजर की क्या व्यवस्था है, आदि बातें गांधीजी को जाननी थीं। उन स्त्रियों ने उन्हें अपने मकान के ऊपर की अट्टालिका दिखाई और अपने मकान के आगे के बाड़े में भी उन्हें घुमाया। पाले हुए खरगोश तथा मुर्गियाँ उन्हें बताईं। जिसके घर में पियानो का बाजा था, वह तो गर्व से फूला नहीं समा रहा था। इस जाँच से यह तो स्पष्ट हो गया कि इन गरीब घरों में प्रत्येक चीज का सही-सही उपयोग किया गया था और सुन्दरता की सभी चीजों को सँभाल-सँभाल कर इकट्ठा किया गया था। गांधीजी का आज का प्रभात अन्य सभी प्रभातों की अपेक्षा बहुत ही आह्लाद-दायक साबित हुआ। और जिन लोगों के घर में वे गये थे, वे तो उस प्रसंग को हमेशा याद करते रहेंगे।

कुछ मशहूर मुलाक़ाती

(५)

किंग्सली हाल की उस पुस्तक में जिसमें अभ्यागत अपने अभिप्राय लिखते हैं, सन् १९३१ की पतझड़ की मौसम में सबसे ज्यादा अभिप्राय लिखे गये थे। इस सारे समय के बीच हमारे टेलीफोन की घण्टी बजती रही और सुबह का नाश्ता तो एक आम क्रिया हो गई थी। टेलीफोन कम्पनीवाले रात के एक बजे हमें न्यूयार्क के लिए सन्देशा लेने के लिए जगाते थे।

उस समय डरहाम का एक मजदूर हमारे यहाँ रहता था, उसे हमने चौकीदारी का काम सौंपा था। उसे प्रवेश-द्वार पर बैठाया गया। असंख्य मुलाक़ातियों का स्वागत करना और उन्हें नकारात्मक जवाब देने का काम उसे ही करना पड़ता। उसे अविचल चट्टान की भाँति स्थिर रहकर सवालों के जवाब देने पड़ते और अपने मिज़ाज़ को भी संभालना पड़ता था। उसे प्रायः सभी काम करने पड़ते, किंग्सली हाल का परिचय देना, हमारा साहित्य बेचना या उसे मुफ्त देना, गांधीजी के मुलाक़ातियों की व्यवस्था करना, इसके अलावा बो मुहल्ले के, किंग्सली हाल में हमेशा आनेवालों के आवागमन में किसी तरह की बाधा न पड़े, इसका भी उसे ध्यान रखना पड़ता था। काफी हद तक तो वह इन कठिन कामों को बखूबी निभा लेता, पर कभी-कभी वातावरण बहुत ही गम्भीर हो जाता।

बो मुहल्ले के लोगों को इन अभ्यागतों का स्वागत करने से प्रेरणा मिलती थी। गांधीजी के आने के एक हफ्ते के अन्दर तो हमारे मुहल्ले के लोगों का गृह-जीवन बहुत ही अस्त-व्यस्त हो गया। मुहल्ले की गली उत्तर-दक्षिण में है और ऊपर की कोठरियों की खिड़कियों की दिशा भी पूर्व-पश्चिम है। ऊपर की दीवार भी ज्यादा ऊँची नहीं है, अतः पोविस रोड पर रहनेवाले उन कोठरियों का दृश्य अच्छी तरह

देख सकते थे। आज भी उस दृश्य की जब वे बात करते हैं तो उनकी आँखें चमक उठती हैं।

"घर के कामों में मेरा जी ही नहीं लगता। मैं कभी गांधीजी की झाँकी लेने के लिए बाहर जाती और कभी वापस अन्दर आ जाती। इसी तरह चलता रहा। बच्चे भी सारे समय उन्हें ही देखते रहते, और उनके कमरे के बाहर आते ही किलकारी मारते। उन दिनों तो शायद ही किसी ने हमारी गली में रविवार का भोजन शान्ति से किया हो। 'ये रहे' की आवाज़ सुनते ही हम लोग बाहर दौड़ते। मिसेज़ ब्राउन भोजन में शाक और अन्य चीजों को बनाना भूल गई। मिसेज़ मिलर ने भोजन तो परोसा, पर उसमें मांस परोसना भूल ही गई। गांधीजी कितने अच्छे गृहस्थ हैं। कम-से-कम अखबारों में जैसा लिखा रहता है, वैसे तो नहीं हैं। वे बहुत ही परोपकारी और गरीबों को खूब समझनेवाले हैं। वे हमारे जैसे ही हैं।" ये हैं उस समय के जन-साधारण के उद्‌गारों के कुछ नमूने।

हमें अनेक बार बेकार मजदूर व कारीगर टेलीफोन का जवाब देने में मदद करते रहते थे, पर अब तो यह काम रोमांचक और स्पर्धा-युक्त हो गया था। अब तो कभी हाथ मि० रुडोल्फ चर्चिल गांधीजी से मुलाकात का समय निश्चित कर रहा था, तो कभी मि० चार्ली चैपलिन का मित्र इन दोनों महापुरुषों की मुलाकात का प्रबंध कर रहा था। कभी स्काटलैण्ड यार्ड से, कभी सेन्ट जेम्स के महल से तो कभी नं० १० डाउनिंग स्ट्रीट से टेलीफोन आते रहते थे। हमारे आश्रम के एक सदस्य को अपने कमरे में गुप्त पुलिस के एक अधिकारी के लिए पहियोंवाले नीचे तख्त, पर बिस्तर बिछाना पड़ता था। देश के तमाम हिस्सों से तथा परदेश से भी लोग सुबह घूमने जाने के आनन्द का उपभोग करने के लिए आते थे, प्रायः उनके लिए कार्यालय में ही सोने की व्यवस्था करनी पड़ती थी। आयरिश कवि जॉर्ज रसेल (ए० ई०) के बारे में हम यह उम्मीद कर रहे थे कि वे ऊपर के किसी कमरे में आकर ठहरेंगे। दुर्भाग्य-वश घर की बीमारी के कारण वे नहीं आ सके। परन्तु अन्य अनेक मेहमानों के आगमन से हमें काफी शिक्षा मिली और हमारे ज्ञान की वृद्धि भी अच्छी हुई। लोगों की सेवा सुबह साढ़े छः बजे ही शुरू करनी पड़ती थी, यह हमारे लिए अजीब

ही समय था; परन्तु गांधीजी के साथ एक घंटे घूमकर तरो ताजा होकर ये लोग राजी-खुशी हमारे साथ चाय पीते समय आनन्द से बातचीत करते थे। इसी तरह हमें सभी प्रकार का ज्ञान मिलता; अनेक प्रवृत्तियों का रहस्य मालूम पड़ता; और इस तरह हमने जो मित्रता का सम्बन्ध कायम किया, उसकी मधुरता देर तक कायम रही।

अनेक बार इनमें से कोई-कोई मेहमान हमारे यहाँ ठहरते, वे हमारे घरेलू कामों में मदद देते, हमारी १५ मिनट की प्रार्थना में शामिल होते, और फिर हमारे साथ नाश्ता भी करते थे। उस समय लम्बी मेज़ पर नाश्ते के लिए बैठे हुए लोगों को अनेक तरह की बातें सुनने को मिलतीं। क्लेरे शेरीडेन (एक अंग्रेज़ महिला शिल्पकार) उत्तर अफ्रिका के रणद्वीप में बसनेवाले अपने परिवार और अपने जीवन की कथा कहतीं। स्वीडन से आये हुए एक पादरी ने अनेक कहानियाँ सुनाईं। उन्होंने यह भी बताया था कि उनका एक मित्र और एक युवक जर्मन नृवंश-शास्त्री बर्मिघम के पास मन्द-बुद्धि मनुष्यों को सुधारने के उपायों के लिए परीक्षण कर रहे हैं। वेल्स के बेकारों के नेता, विश्वविद्यालयों के अध्यापक, दक्षिण अफ्रिका के टाल्सटाय फार्म के पुराने आश्रमवासी, शराबबन्दी-आन्दोलन के अग्रणी, अमरिकन, फ्रेंच और स्विस लोग हमारे आश्रम के जीवन में सरलता से ही हिल-मिल जाते थे, हमें ऐसा महसूस होता था कि आश्रम छोड़ते हुए उन्हें दुःख होता था। यह संभव हो सकता है कि यह सुखद कल्पना हमारे मन में सिर्फ भ्रममात्र हो, तो भी हमें उसी सुखद-कल्पना में विचरना बहुत भाता है।

इन मेहमानों में सर्वप्रिय मेहमान ब्रिगेडियर-जनरल क्रोफ्यिर थे। वे जब आये तब मैं बाहर गई हुई थी। लेकिन जब आई तब आश्रम-वासियों ने उनकी जैसी प्रशंसा की, वैसी वे बहुत कम लोगों की करते थे। "उन्होंने तो हमारा खूब मनोरंजन किया। वे यहाँ खूब ही हिलमिल गये। हमें उनके लिए विवेक एवं शिष्टाचार का ध्यान ही नहीं रखना पड़ता था।"

पहले तीन सप्ताहों तक गांधीजी के जितने मित्र मिलने आते, वे बहुत ही दृढ़ और गम्भीर मुख-मुद्रा धारण करते; और अनेक कारण बताकर यह कहते कि गांधीजी को वो मुहल्ला छोड़कर लन्दन के किसी अच्छे सुधरे हुए भाग में चला

जाना चाहिए। इनमें से एक महिला ने मुझसे कहा,--"मिस लिस्टर! आप उन्हें यहाँ रख ही नहीं सकतीं। निस्सन्देह आप भी यह समझती हैं कि वे यहाँ रहें तो अच्छा है, पर हम लोगों को जब इनसे मिलना हो तो हर बार दो पौण्ड मोटरवाले को देना क्या संभव हो सकता है? क्यों ठीक है न?"

मैंने हाँ, ना, किये बिना इतना ही कहा कि "इसका निर्णय तो गांधीजी ही करेंगे।" यद्यपि मुझे यह अच्छी तरह मालूम था कि यह महिला यदि चाहे, तो इन्हें एक के स्थान पर दो-दो मोटरें मिल सकती हैं।

गांधीजी चर्खा कातते जाते थे और इस बीच उनके ठहरने के लिए अन्य मित्रों ने जो जगहें परिश्रमपूर्वक खोजी होती थीं, उनका विवरण भी साथ-साथ सुनते जाते थे और हमेशा अनासक्ति से यही जवाब देकर संतोष करते,—"मुझे यदि यहाँ से जाना ही पड़ा, तो मैं किसी ऐसी ही जगह रहूँगा, जहाँ मैं इन्हीं लोगों—यानी गरीबों--के बीच रह सकूँ।"

सर चार्ल्स ट्रिवेलियन यह सुनकर कि गांधीजी को मकान की आवश्यकता है, मोटर से दौड़े आये और उन्होंने अपना घर गांधीजी के रहने के लिए देने की इच्छा जाहिर की; परन्तु यह सूचना भी उन्हें अव्यवहार्य प्रतीत हुई।

इसके बाद मिस मेरी ह्यूज गांधीजी से मिलने आईं। 'टॉम ब्राउन्स स्कूल डेज' के लेखक ह्यूज की आप वयोवृद्ध लड़की हैं। हमने जब पहले उन्हें अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया, तो उन्होंने कहा था,--'नहीं, मैं नहीं आऊँगी। ऐसे महान् पुरुष का अमूल्य समय मैं क्यों लूँ? इतने बरस से मैं उनके लिए निरन्तर प्रार्थना करती रही हूँ। फिर मुझे उनसे बातचीत करने, सुनने और उन्हें आँखों से देखने की दरकार ही क्या?" हमें उन्हें समझाना पड़ा था,--"हमारा मेहमान आपसे मिलना चाहता है, इसलिए आपको आना ही चाहिए।" मेरी ह्यूज ने आज से पैंतालीस साल पहले कारखानों के मजदूरों के लिए जो लड़ाई लड़ी थी, उसके बारे में गांधीजी ने बहुत-कुछ सुना था। जो लोग मजदूरों को ज़रा भी किसी तरह की सहूलियत नहीं देना चाहते थे, उनसे इन्होंने सहूलियतें लीं और लड़ाई तभी बन्द की जब माँगें पूरी हुईं। वे अब भी उसी जगह पर रहती

थीं, जहाँ आज से पैंतालीस साल पहले थीं। एक छोटी-सी शराब की दूकान को बदल कर उसे रहने का स्थान बनाया गया था, जिसमें ये रहती थीं। अपने लिए एक बहुत ही छोटी—दस फीट लम्बी और आठ फीट चौड़ी—कोठरी रखी थी ; यही उनकी रहने की जगह और यही उनका कार्यालय था। वे अपने लिए मुश्किल से एक पेनी खर्च करती थीं। मैंने उन्हें कहा,--"इस कड़कड़ाती ठण्ड में अँगीठी के बिना आपको सर्दी नहीं लगती ?" तुरन्त ही अपना गरम हाथ निकालकर बोलीं--"मेरे शरीर पर हाथ रखकर तो देखो। गरीबों का दुःख देखकर मैं हमेशा क्रोध से जलती रहती हूँ, इसलिए सर्दी लगे कैसे ?"

एक दिन सुबह हम इन्हें गांधीजी के कमरे में ले गये। गांधीजी उनका सत्कार करने के लिए खड़े हुए। दोनों एक-दूसरे के सामने देखते हुए हाथ मिलाकर खड़े रहे। उन दोनों की मुस्कुराहट में यह साफ़ नजर आ रहा था कि दोनों एक-दूसरे से चिर परिचित हैं। मेरी ह्यूज ने गांधीजी से कहा,—"यह आपके जाने की क्या बात चल रही है ? इसमें कुछ सार नहीं है। यह जगह आप ही के लिए बनाई गई है, और आपने अपने को यहाँ तन्मय भी कर लिया है। यह तो किंग्सली हॉल है। किंग्सली लिस्टर जवान थे। उनमें जवानी का जोश था। वे मरे नहीं हैं ; क्योंकि उनकी आत्मा यहीं बस रही है। आप दूसरी जगह जा ही कैसे सकते हैं ?"

जिस समय वे ये वाक्य कह रही थीं, उस समय उसी कमरे के बाहर स्व० महादेव भाई और श्री देवदास गांधी इन वाक्यों को स्पष्ट रूप से सुन रहे थे और पारदर्शक खिड़की में से इन दो सम-धर्मी आत्माओं के मिलन को भी वे साश्चर्य देख रहे थे। और आनन्द के भावों के साथ-साथ उनकी मुख-मुद्रा पर एक-दूसरे के प्रति आदर का भाव भी स्पष्ट झलक रहा था।

सेन्ट जेम्स के पास मकान खोजने के लिए एक के बाद एक मुहल्ले छान डाले गये, पर गांधीजी की दिलचस्पी इस तरफ से उत्तरोत्तर कम होती गई। अन्त में उन्होंने कहा,--"जिसे जो कहना हो वह कहे, परन्तु इस पड़ोस को छोड़ना मुझे नहीं जँचता। क्योंकि यहाँ मैं इंग्लैंड की आम जनता की आत्माओं की झाँकी ले रहा हूँ।"

पहले दिन के मुलाक़ातियों में एक विशेष आकर्षक वयोवृद्ध पुरुष थे। उनका चेहरा स्व० कविवर रवीन्द्रनाथ की याद दिलानेवाला था। और वे सफेद बारीक मलमल का साफा बाँधे हुए थे। गांधीजी ने मेरा उनसे परिचय कराते हुए कहा कि ये सर प्रभाशङ्कर पट्टणी, एक देशी राज्य के दीवान हैं। उन्होंने मुझसे पूछा,—"आप मुझे भी अपना मेहमान बना सकते हैं?" उनकी सम्मति में गांधीजी ने पूर्वी लन्दन में ठहरकर अच्छा ही किया। वे स्वयं भी यहीं रहना चाहते थे। उन्होंने फिर कहा,—"किंग्सली हॉल में जगह न हो, तो पास-पड़ोस में कहीं प्रबन्ध नहीं हो सकता?" दरअसल इन्हें ठहराना आसान था; क्योंकि उन्हें एक ही चीज़ चाहिए थी और वह यह कि गरम पानी की व्यवस्थावाला स्नानघर। परन्तु बो मुहल्ले में ऐसे स्नानघर कहाँ थे। किंग्सली हॉल में तो इतनी भीड़ थी कि हम आश्रम-वासियों में से दो जनों को उन दिनों आसपास की चालों में सोना पड़ता था। अतः हमारे यहाँ आनेवाले एक दूसरे उत्तम मेहमान को इच्छा न होते हुए भी नकारात्मक जवाब देना पड़ा। परन्तु सर पट्टणी हमसे अनेक बार मिलने आ जाते थे। उन्हें आश्रम के लोगों से प्रेम हो गया था और किंग्सली हाल के समारभों और प्रार्थनाओं में उनकी मुख-मुद्रा और शरीराकृति तो परिचित-सी हो गई थी।

इसके बाद आये मोतीवाले राजा। बो मुहल्ले के लोगों के लिए यह एक रोमांचकारी प्रसंग था। इनकी चाल-ढाल ही नहीं, अपितु शरीर भी एक राजा जैसा ही था। शरीर उनका सीधा और चाल चुस्त थी। मुख-मुद्रा उनकी बुद्धि-सूचक तथा उनके रीति-रिवाज में स्वाभाविकता, कुलीनता और गौरवशीलता थी। उनके कोट का कपड़ा तो कहीं नजर ही नहीं आता था; क्योंकि उस पर मोती-ही-मोती जड़े हुए थे। उनके साथ उनके सुपुत्र और सुपुत्री भी थीं। उनकी पोशाक भी उसी ढंग की थी। उन्होंने यह उचित समझा कि अपने राज्य से आये हुए महापुरुष की मुलाक़ात लें। वे अपने साथ बिना बीज के सन्तरों का एक टोकरा गांधीजी को भेंट देने के लिए लाये थे। मोतीवाले राजा के आने की खबर सुनते ही गांधीजी उनका स्वागत करने के लिए नीचे उतर आये थे।

मि० हेनरी ब्रेल्सफर्ड गांधीजी से मिलने के लिए अनेक बार आते थे। उनकी

पत्नी, जो विवाह से पहले मिस क्लेरलेटन थीं, प्रसिद्ध चित्रकार हैं। उन्होंने गांधी-जी का एक चित्र भी तैयार किया था।

कुमारी एवेलीन अन्डरहिल ने गांधीजी से मिलने की इच्छा जाहिर की और नम्रतापूर्वक कहा,--"यद्यपि मैं जानती हूँ कि मुझे उनका समय लेने का अधिकार नहीं, परन्तु उन्हें तो मेरा समय लेने का हक़ है।" गांधीजी ने इसका तुरन्त ही उत्तर दिया,—"मैंने जेल में उनकी रचनाएँ पढ़ी थीं, मुझे उनसे बहुत ही आनन्द मिला।" इस तरह यह मुलाक़ात भी हुई।

श्री कृष्णमूर्त्ति भी मिलने आये। इन्होंने गांधीजी से बहुत-सी बातें कीं। उन्हें देखने का मुझे पहला मौका मिला, इससे मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। बाईस वर्ष पहले मैंने इनके विषय में सुना था। उस समय मिसेज़ बेसेंट इन्हें संसार में एक महान् पद प्राप्त करने के लिए उच्च शिक्षा दे रही थीं। कृष्णमूर्त्ति ने जो अवतार-पद स्वीकार किया था वह मैंने देखा था; उनकी पूजा के बारे में भी मैंने सुना था और उनकी सेवा के लिए जिन मनुष्यों को तैनात किया गया था, उनमें से भी कइयों से मैं मिल चुकी थी। इसके बाद एक दिन अखबारों में खबर निकली कि कृष्णमूर्त्ति ने अपने उस पद का और उससे संबंधित सभी वस्तुओं का स्वेच्छा से परित्याग कर दिया है। यह खबर पढ़कर एकाएक मेरे मन में उनके प्रति प्रशंसा के भाव जागृत होने लगे।

'दि बंगाल लॅन्सर' नामक पुस्तक के लेखक मेजर यीट्स ब्राउन की मुलाक़ात भी हमें बहुत पसन्द आई। उस समय हमें बहुत दुःख हुआ, जब हमने सुना कि मशहूर दार्शनिक जार्ज बर्नार्ड शा गांधीजी से नाइट्स ब्रिज में ही मिल लिये हैं। हम लोग अनेक वर्षों से उनके दर्शन की राह देख रहे थे।

हमारे मुहल्ले के पादरी ग्रेटबेक की मुलाकात भी असाधारण थी। वे पहले से समय तय कर एक दिन सुबह सवा आठ बजे आये, और आकर पूर्वी लन्दन की डायोसीसन असोसिएशन की तरफ से निमन्त्रण दे गये। उनके जाने के बाद गांधीजी ने मुझसे कहा,—"ये तीन मिनट में आकर चले भी गये। पर इतने समय में ही उन्हें जो कहना था, कह गये। मुख्य मुद्दे की बात के सिवा

वे और कुछ बोले ही नहीं। जो कुछ कहना था, वह भी कितनी सरलता, सुन्दरता और शान्ति से कह गये। इनके लिए मेरे मन में प्रशंसा के भाव उत्पन्न हो गये हैं, इन्हें मैं सर्वश्रेष्ठ मुलाक़ाती समझता हूँ।"

एक दिन शाम को ग्लोसेस्टरशायर का एक कद्दावर किसान आया। जिन बकरियों का दूध गांधीजी के लिए भेजा जाता था, उनका वह मालिक था। लन्दन में दूध तथा दुधारू जानवरों की जो प्रदर्शनी हुई थी, उसके लिए वह आया था। गांधीजी के पास आकर उसने कहा,—"मैं समझता हूँ, जो उम्दा प्राणी आपका पोषण कर रहे हैं, उन्हें देखने आना आपका फ़र्ज़ है।" उसको यह बात उचित थी। इसलिए गांधीजी ने एक घंटा प्रदर्शनी में खूब ही आनन्द से बिताया, और उनकी इस मुलाक़ात से अखबार-नवीसों को बहुत ही सामग्री मिली।

दूध लानेवाला लड़का, संदेशे लानेवाले लड़के और अन्य कितने ही लोग अपनी नोट-बुकें हमारे पास गांधीजी के हस्ताक्षर के लिए छोड़ जाते। एक बार पुलिस के समाचार-विभाग की एक महिला ने अपने पत्र में इन बातों का उल्लेख किया, और एक असंभव बात की माँग की। उसे गांधीजी के हस्ताक्षर लेने-वालों का एक छोटा-सा, पर सम्पूर्ण परिचय चाहिए था। उसने अपने पत्र में लिखा था,—"मुझे विश्वास है, आप गांधीजी से इतना काम तो करा ही सकेंगी, क्योंकि मैंने सुना है कि वे दूध भरनेवाले लड़कों तक को अपने हस्ताक्षर देते हैं।"

मुझे उसे उत्तर में समझाना पड़ा,—"आपने अपने पत्र में अनुचित बात पर ज़ोर दिया है। आप लिखती हैं—'दूध लानेवाले लड़के को भी' पर आपको मालूम होना चाहिए कि यह लड़का तो हमारे मुहल्ले के पुराने-से-पुराने कुटुम्ब का है। वह वफादार, खुश-मिज़ाज़ और आनन्दी जीव है। बुद्धिशाली भी है और सीटी भी अच्छी बजाता है। वह सुन्दर भी है। हस्ताक्षर लेने की योग्यता इस लड़के के सिवा और किसमें है?"

एक दृश्य मेरी स्मृति में हूबहू वैसे-का-वैसा जमा हुआ है। गांधीजी के हाथ में एक तार है, वे व्याकुल-से नजर आ रहे हैं, और अपनी व्याकुलता से उन्हें जरा खुशी भी हो रही है। उनके उत्तर की प्रतीक्षा में उनका मंत्रि-मण्डल

भी सामने बैठा है। मेरे कमरे में प्रवेश करते ही मौन-भंग होता है और कुछ शब्द मेरे कानों को आकृष्ट करते हैं,--"पर ये विदूषक ही हैं न? इससे मिलने का तो कोई अर्थ नहीं।" उसे नकारात्मक उत्तर देने के लिए गांधीजी ने वह तार एक मंत्री की तरफ बढ़ाया, मैंने तुरन्त ही तार भेजनेवाले का नाम देखा।

मैंने पूछा—"बापू! क्या आप इन्हें नहीं जानते?" मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।

"नहीं" गांधीजी ने तार का कागज़ वापस लिया और जो बात मंत्री लोग बताने में असमर्थ थे, उसे जानने के हेतु मेरे सामने देखा। "चार्ली चैपलिन! इन पर तो सारी दुनिया कुर्बान होती है। इन्हें तो आपको मिलना ही चाहिए। इनकी कला का मूल आधार मजदूर-वर्ग की जिन्दगी है। जिस तरह आप गरीबों की हालत समझते हैं, उसी तरह ये भी समझते हैं। अपने चित्रों में ये हमेशा गरीबों का सम्मान करते हैं।"

इसलिए दूसरे सप्ताह बो मुहल्ले से भी पूर्वतर दिशा में केनिंग टाउन की एक पिछली गली में डा० कतियाल के घर में इनकी मुलाक़ात की व्यवस्था की गई और उस मुहल्ले के लोगों को इन दोनों महापुरुषों को एक साथ सम्मान देने का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ। हम सबने इस खबर को गुप्त रखने की प्रतिज्ञा की। तो भी न जाने यह भेद कैसे खुल गया और मुलाक़ात के समय बहुत बड़ा समूह जमा हो गया। लोग आपस में तथा पुलिसवालों से हँसी-मज़ाक कर रहे थे। मि० चैपलिन अपनी मोटर से कूदकर उतरे, लोगों को नमस्कार करने के लिए उन्होंने अपना टोप ऊपर उठाया। और अपने दोनों हाथों से नमस्कार किया। यह देखकर लोग हँस पड़े। इतने में गांधीजी भी आ गये, उन्हें देखकर भी लोग हँसे और खुश भी हुए।

घर में ये दोनों पुरुष हम लोगों से कुछ दूर एक कोच पर बैठे; और उन्होंने श्रमजीवी, अध-भूखे, यन्त्र के गुलाम बने हुए मजदूरों और जेलखानों के कैदियों के विषय में बातचीत की। बातचीत के दौरान में मि० चैपलिन ने कहा,—

"सिंग-सिंग जेल के कैदियों के साथ मैंने एक घंटे तक बात की थी, मैं समझता हूँ, यही काम मुझे बद से बदतर करना पड़ा था। ऐसा मैं दूसरी बार न कर सका। बात करते समय मेरे मन में यही विचार घूम रहा था कि ईश्वर का दयार्द्र हाथ तुझ पर न होता तो तू भी इनमें ही होता।"

इसके बाद एक अकल्पनीय, अशिष्ट और अशोभनीय घटना घटी। घर के छोटे-से अगले आँगन में, सभी सूचनाओं का उल्लंघन कर, अखबारी फोटोग्राफरों की एक बिलकुल निरंकुश मण्डली अन्दर घुस आई। इन्होंने घर के पीछे की दीवार तोड़ दी थी, और जैसे-तैसे घर में घुस आये थे। घर-मालिक के अनेक बार मना करने पर भी ये लोग जरा भी नहीं खिसके और गांधीजी के सामने, उनकी इच्छा के विरुद्ध कैमरों की पंक्ति लग गई और उन्हें लाचार होकर यह सब कुछ सहन करना पड़ा। आखिर यह कँपकँपी पैदा करनेवाला तूफान भी खत्म हुआ। कमरा पुनः खाली हो गया। इतने में सात बज गये। अतः सब लोगों ने वहीं बैठकर सान्ध्य-प्रार्थना की।

कुछ अच्छे दोस्त

(६)

लन्दन में गांधीजी ने जिन सभाओं में भाषण दिया उनमें से बहुत-सी सभाओं के बारे में मुझे असन्तोष रहा। सभा की टिकटें बिक जाने पर भी लोग सप्ताहों तक टिकटों के लिए चिल्लाते रहते। लोग दूर-दूर से आते और कई व्यक्ति तो गांधीजी को देखने और उनकी सन्देश-वाणी सुनने की इच्छा से आते थे, इसलिए सभा की व्यवस्था में ऊटपटांग परिवर्तन भी किये जाते। परन्तु जब सभा की रात आती, तो यही प्रतीत होता कि वास्तविक सभाजन तो गांधीजी से मिल ही नहीं सके। संकोच, शिष्टाचार और अकल्पनीय थकावट की लहर न जाने कहाँ से आ जाती। और लोग इस हँसमुख, विनोदी और हितेच्छु पुरुष का वास्तविक परिचय कभी भी प्राप्त नहीं कर सके।

यह क्षोभ और संकोच क्यों होता था? क्या सभा के प्रबंधकों को यह भय था कि कहीं कोई भूल या अविवेक न हो जाय? या क्या गांधीजी में कोई ऐसी विचित्रता थी जिससे लोगों में बेचैनी पैदा होती? सचमुच ऐसी कोई भी बात नहीं थी! जो लोग पूर्व के रस्म-रिवाज़ों से परिचित थे, उनके लिए गांधीजी के वस्त्रों में कोई नवीनता नहीं थी। सभा के श्रोताओं में से प्रायः हरेक ने बाइबिल के अगणित पात्रों के चित्र देखे होंगे। उनके वस्त्र भी गांधीजी के जैसे ही होते हैं। श्रोता और वक्ता के बीच के इस अन्तर को दूर करने के लिए मैं अक्सर सुबह घूमते समय गांधीजी को बता देती थी कि आज सायंकाल कैसे लोगों के सामने उन्हें भाषण देना है। उनके आन्तरिक जीवन का भी मैं वर्णन करती। या उन संस्थाओं का पिछला इतिहास भी बताती जो सभाओं का आयोजन करती थीं। कभी-कभी मैं कहती,—"आज की सभा में आप जी भरकर बोल सकते हैं। आज के श्रोता आपके हर एक तरह के भाषण

सुन लेंगे। और आपकी पूरी-पूरी बात समझ लेंगे। इन लोगों का दृष्टिकोण विशाल है, और इनमें नम्रता भी काफ़ी है।"

रात को मैं यही सोचती रहती कि आज श्रोताओं और गांधीजी में अच्छा समाधान हुआ होगा। परन्तु मेरी ऐसी आशा निष्फल ही जाती। गांधीजी अपनी हर एक सभा में श्रोताओं से सवाल पूछने को कहते, जिससे कि दोनों एक दूसरे के ज्ञान का आदान-प्रदान कर सकें।

गांधीजी अपनी धीर और गंभीर वाणी से बोलना प्रारम्भ करते, तोड़-तोड़कर शब्द बोलते, परिस्थिति का वर्णन तटस्थता से करते और सत्य के पुजारी के समान हरेक वाक्य के बोलने में बहुत ही सावधानी रखते। उनके भाषण में न तो अनावश्यक आवेश होता था और न भावों का अनुचित प्रवाह। जैसे एक वक्ता श्रोताओं पर अपना प्रभाव डालने के लिए सामान्यतः छटामयी भाषा, आवाज़ का आरोह-अवरोह, शारीरिक हलचल और चेहरे के हाव-भाव को बदलता है, उस तरह का गांधीजी के दो घण्टे के व्याख्यान में कुछ भी न पाया जाता था।

सभा ख़त्म होने पर गांधीजी, बिना किसी शारीरिक विशेष हलचल के कम-से-कम शब्दों को बोलकर, सभागृह से बाहर आ जाते। सभा के संयोजकों के लिए यह एक अजीब पहेली थी। परन्तु मुझे तो ऐसा महसूस होता है कि गांधीजी का यह स्वभाव ही हो गया है, उनके धीमे-से-धीमे बोले हुए शब्दों को भी लोग प्रमाण-रूप में मानते हैं, और उन पर अमल भी करते हैं; इसीलिए वे शब्दों के प्रयोग में कोर-कसर नहीं रखते। वे आराम और हँसी-दिल्लगी के लिए अलग समय नहीं रखते; यह इसलिए कि उन्हें न कभी तंगी महसूस होती है और न उन्हें कभी आवेश ही आता है। इनका शमन करने के लिए ही मनुष्य को खास प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। उनकी आत्मा हमेशा अविचल रहती है। वे प्रार्थना करते हों, दिनचर्या में लगे हों, किसी मजदूर के छोटे-से घर के चूल्हे के सामने बैठे हों, या किसी क़ैद-खाने की दीवार के पीछे हों, उनकी आत्मा अविचल और शान्त ही रहती है। उन्हें किसी ने कहा था कि "भारतीय समस्या के हल में आपकी यूरोप-यात्रा की

सफलता नहीं है; अपितु श्रम, थकान और चिन्ता के भार से दबे यूरोपियनों के ज्ञान-तन्तुओं की बीमारियों को दूर करने के लिए आप जो उपाय बता रहे हैं, यही आपकी यूरोप-यात्रा की सच्ची सार्थकता है।"

मुझे हमेशा इसकी चिन्ता रहती कि मध्यम वर्ग के लोग गांधीजी को सच्चे-रूप में पहचानने लगें। मैं समझने लगी कि हम विलायती लोगों का यह स्वभाव हो गया है कि जिस मनुष्य के प्रति हमारे मन में प्रशंसा और गर्व का भाव होता है, उसके साथ हम विनोद करते हैं, हँसी-मज़ाक करते हैं और उसके साथ हर्षनाद भी करते हैं। उसके बारे में अनेक दिलचस्प बातें भी करते हैं और इस प्रकार हम अपनी सच्ची भावना के बदले उल्टा ही प्रदर्शन करते हैं। आदरणीय अतिथि के सत्कार के लिए हम लोग या तो उसे भोजन का निमंत्रण देते हैं या कम-से-कम चाय का एक प्याला तो अवश्य पिलाते हैं। पर गांधीजी तो अकेले ही बैठकर भोजन करते हैं और चाय तो क़तई नहीं पीते। ऐसी हालत में हमारे लिए और क्या रास्ता हो सकता है? भारतवासियों को यदि किसी मनुष्य के प्रति आदर और श्रद्धा व्यक्त करनी हो, तो वह उसकी चरण-रज लेते हैं। यह तरीका तो हमारे लिए उपयुक्त न होगा! और गांधीजी तो अपने भारतीय अनुयायिओं को भी चरण-रज लेने से रोकते हैं। यूरोपियनों का व्यवहार जैसा अपने देश में होता है, परदेश में उससे कहीं भिन्न होता है। इसलिए भारत में जब कभी ऐसा प्रसंग आता है, तो उस पर से भारतीय लोग ऐसा समझने लगते हैं कि हम सब यूरोपियन लोग पक्के शिष्टाचार के अनुयायी हैं और विवेक के अनुसार जो नियम होते हैं, उसके हम लोग गुलाम हैं। भारतीयों के स्वभाव में जो विवेक जन्म से भरा होता है, उसी के वशीभूत होकर वे हमारे सामाजिक समागम में होनेवाले अनेक निषेधों का उल्लंघन करते हैं, पर इससे हम लोगों को यह नहीं समझना चाहिए कि वे हम लोगों को किसी तरह की तकलीफ देने के लिए ऐसा करते हैं। इसीलिए वे लोग शान्ति, धीरज और गम्भीरता से इन्तज़ार करते रहते हैं और हम लोग जब कोई छोटा-सा रस्म-अदायगी या शिष्टाचार करते हैं, तो ये लोग उसे देखकर उसका अनुकरण करते हैं। इस सभ्यता और शिष्टाचार के मामले में हमारे रीति-रिवाज़ों

के अज्ञान द्वारा वे लोग न तो हमें किसी तरह की द्विविधा में डालना चाहते हैं, और न किसी तरह के संकोच में।

इस प्रकार पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के सम्मुख खड़े होकर इन्तजार करते रहते हैं। दोनों पक्ष के मन में आतुरता और उत्सुकता होती है, पर यह वे प्रकट नहीं कर सकते, और विधि-निर्मित अमूल्य क्षण बीतते चले जाते हैं। यही सबसे ज़्यादा दुःखद चीज़ है। क्योंकि बो मुहल्ले के लोग गांधीजी को प्रतिदिन देखते थे और उनकी गांधीजी के साथ ख़ूब पटती भी थी; गांधीजी उनके लिए अब पराये नहीं थे। मार्ग में चलनेवाले आदमी भी गांधीजी के आगे निकल जाने पर, उन्हें पहचानकर आदर-सत्कार के वचन कहते; और यदि गांधीजी न सुनें तो उनके पीछे आकर ऊँचे स्वर में 'गुड-मार्निंग' 'गुड-मार्निंग' कहते। गांधीजी को लन्दन के लोगों द्वारा किये गये विनोद हमेशा बहुत पसन्द आते थे और उनका जवाब देने में वे कभी चूकते नहीं थे।

हमारे रात के चौकीदार को सुबह की कड़कड़ाती सर्दी में गांधीजी से कुछ बात करनी थी। दोनों एक-दूसरे के भाव ताड़ गये। और ये दोनों बातें करते थे कि इतने में तो अँगीठी के आस-पास छः छोटे-छोटे लाल हाथ उसे घेरकर बैठे नजर आये। सरदी सख्त थी; और बाल-मन्दिर के तीन बालकों ने मा को किसी तरह समझा-बुझाकर सुबह गांधीजी के साथ घूमने जाने के लिए इजाज़त ले ली थी। और वे ही अपनी सर्दी दूर कर रहे थे।

हमारे एक पड़ोसी को गठिया हो गया था। उसने अपनी स्त्री के मारफत गांधीजी को कहला भेजा कि "मैं चल-फिर नहीं सकता, पर आपके दर्शन की उत्कट अभिलाषा है।" दूसरे दिन हम चारों जन उसकी रसोई की अँगीठी को घेर-कर बैठे और एक-दूसरे के अनुभवों का आदान-प्रदान किया।

एक स्थानीय अस्पताल से एक अंधे ने गांधीजी को पत्र लिखा। और दूसरे दिन इस मान्य अतिथि के सत्कार के हेतु अस्पताल का वह वार्ड धोकर साफ-सुथरा कर दिया गया।

हमारे एक पड़ोसी मजदूर को एक दिन एक सभा में हमारे इस अमूल्य अतिथि

के विषय में बोलने के लिए कहा गया, उसने कहा,—"गांधीजी कुरूप, दुर्बल, पतले, और विचित्र मुँहवाले गँवार मनुष्य हैं, ऐसे समाचार अखबारों में छप चुके हैं; पर गांधीजी तो ऐसे नहीं हैं। वे जिस दिन यहाँ आये उस दिन मुझे विश्वास है कि किंग्सली हाल के आस-पास लगभग हज़ार मनुष्य उन्हें देखने के लिए एकत्र हुए थे। हमने जब उन्हें अपनी आँखों से देखा, तब मालूम हुआ कि वे तो बहुत ही अच्छे आदमी हैं, वे हँसते हैं, विनोद करते हैं और विचित्र तो नाममात्र को भी नहीं। मैं उन्हें अकसर देखता रहता हूँ, क्योंकि मैं उनके घर के सामने ही रहता हूँ। मैंने उनके सभी व्यवहार जी भरकर देखे। मैं समझता हूँ, वे ऐसे आदमी हैं, जिनके प्रति हमारे हृदय में आदर पैदा होता है। उनका मनोबल कितना ज़बरदस्त है! सुबह पाँच बजे उठकर तो वे घूमने जाते हैं। जरा सोचकर तो देखो कि उन्हें इतना जल्दी उठने की आवश्यकता न होते हुए भी वे उठते हैं। हमें जब कभी बहुत सबेरे काम पर जाना होता है, तब अनेक बार हम लोग मन में सोचते हैं—'अहा! कितना सुहावना दिन है! हवा शुद्ध और आकाश कितना भव्य है! मैं बहुत सबेरे उठने की आदत चालू रखूँगा, भले ही आगामी सप्ताह मुझे देर से ही काम पर क्यों न जाना हो, तो भी मैं जल्द उठूँगा।' परन्तु वह दिन जब आता है, तो हम करवट बदलकर सो जाते हैं—हममें इतना मनोबल है कहाँ? परन्तु गांधीजी तो अपने सुबह उठने के नियम में एक बार भी नहीं चूके। उन्होंने जो निश्चय किया वह कभी नहीं टूटा। क्या यह कुछ कम बात है? उनकी प्रार्थना देखो। मैं स्वयं तो धार्मिक नहीं हूँ, परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि वे रोज़ सबेरे प्रार्थना के लिए तीन बजे उठते थे और इस बारे में उनसे ज़रा भी भूल नहीं होती, यह हम लोगों के लिए एक अलौकिक बात है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वे अकसर रात के एक-दो बजे घर आते थे। मेरे घर के सामने ही वे रहते थे, अतः आने की आहट मैं हमेशा सुना करता था। इन बातों से उनके बारे में आपके दिल में क्या विचार उठते होंगे, यह तो मैं नहीं कह सकता। इस समय तो वे क़ैदखाने में हैं। उन्हें जो बात सत्य और उचित प्रतीत हुई, उसी के लिए वे अहिंसक संग्राम कर रहे हैं। मैं आखिर में उनके लिए इतना

ही कह सकता हूँ,—'भगवान् उनका भला करे !' मुझे पूर्ण आशा है कि वे जो कुछ चाहते हैं, वह उन्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा।"

किंग्सली हाल-परिवार में जब किसी की वर्षगाँठ होती है तो अन्य सदस्य छह-छह पेंस का चन्दा देते हैं। शाम के भोजन से अण्डे-मांस या फलों को निकाल दिया जाता है और खरीद-फरोख्त में जो होशियार होता है, उसे पाँच शिलिंग की खरीद-फ़रोख्त के लिए भेजा जाता है। दिन का काम लगभग सवा दस बजे पूरा होता है, अतः हम लोग मोमबत्ती की रोशनी से सजे हुए दीवान-खाने में प्रवेश करते हैं, सामने सुस्वादु भोजन परोसा हुआ रहता है। इस दीवान-खाने की मनोमोहक सजावट आधीरात तक क़ायम रहती है।

गांधीजी के जन्मोत्सव के लिए सभी ने खुशी-खुशी छह-छह पेनी का चन्दा दिया। गांधीजी से उस दिन प्रार्थना की गई थी कि वे अपने नाइट्स ब्रिज के आफ़िस से शीघ्र आ जायँ। दरियाँ बिछाई गईं और गांधीजी के कार्य की रूप-रेखा के अनुसार हरेक मनुष्य को बैठने की अलग-अलग जगह बताई गई। भोजन बिल्कुल सादा था और हम सबने एक साथ ख़ूब आनन्द किया।

परन्तु ज्यों-ज्यों गोल-मेज परिषद् का काम बढ़ता गया, त्यों-त्यों गांधीजी का खाली समय घटता गया। गांधीजी इंग्लैण्ड, वेल्स, आयर्लैण्ड तथा और कई जगहों पर जाना चाहते थे, परन्तु इनमें से एक भी देश वे न जा सके। वे जब कभी अपने नाइट्स ब्रिज के कार्यालय से रात के दस बजे से पहले लौटते थे, तब अपने कमरे में जाने से पहले हमारे किसी 'क्लब' में जरूर आते थे।

शनिवार की रात को किंग्सली हाल के लोग, तीन मील दूर के शराबखानों में एकत्र होते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष तीन-तीन पेंस का चन्दा इकट्ठा कर अपने मित्रों के साथ मौज-शौक करते हैं। गुरुवार को ही वे लोग अपनी शनिवार की रात का कार्यक्रम निश्चित कर लेते हैं। खेल-कूद, पुराने ढंग का नृत्य, प्रतिस्पर्धा, अनेक तरह की शर्तें, छोटे-छोटे नाटक और प्रहसनों का कार्यक्रम इसमें मुख्य होते हैं। यह 'ख़ुशी की रात' हमारे आस-पास ख़ूब मशहूर है। कार्यक्रम पूरा होने के बाद सभी लोग गोलाकार में दीवान-खाने में इकट्ठा होते हैं, एक दूसरे के हाथ से हाथ

मिलाते हैं, समूह-गान गाते हैं और एक साथ तीन-चार बार कमरे के मध्य भाग की तरफ बढ़ते हैं और उल्टे पैरों वापस लौटते हैं। इसके बाद यह मित्राचार और साहचर्य्य का भाव एकाग्र हो जाता है, और प्रार्थना का रूप धारण कर लेता है। प्रार्थना कभी-कभी मौन होती है और कभी-कभी एक साथ बोलकर। इसके आधे मिनट बाद ही लोग बिखर जाते हैं और घर का रास्ता लेते हैं।

इस समारंभ में गांधीजी यथाशक्ति हाज़िर रहते। वे जिस दिन पहले-पहल लन्दन आये थे, उस दिन शनिवार ही था। इसलिए इस समारंभ का शोर और लोगों की मित्रता की भावना बहुत ही बढ़ गई थी। उस दिन की शोभा सदा की शोभा से बहुत अधिक थी। पियानो के पीछे का दरवाजा खुला, और पाँच खद्दरधारी व्यक्तियों ने इस दीवान-खाने में प्रवेश किया। सबने अपने-अपने मौज-शौक के खेल विवेक-पूर्वक जारी रखे, क्योंकि सभी लोगों को यह ज्ञात था कि गांधीजी जब तक यहाँ रहें, तब तक उन्हें आश्रम का ही एक सदस्य समझना था, उन्हें अलग समझ उनके प्रति विशेष ध्यान देकर उनके मन में संकोच के भाव नहीं पैदा होने देने चाहिए थे। गांधीजी ने सभी खेल आनन्द से देखे। यह दृश्य वास्तव में मनोमोहक था। जवान माता-पिता अपने पहले बच्चों को गोद में लेकर आये थे। इसलिए अधिक उम्र के व्यक्तियों के लड़के नाच के बीच उछल-कूद कर रहे थे। और ज्यादा उम्र के स्त्री-पुरुष बैठे-बैठे देखते और अनन्त आनन्द का रसास्वादन कर रहे थे। खासकर इन बच्चों के दादा-दादी तो बहुत ही खुश हो रहे थे। मुझे अपने मान्य अतिथि की आँखों द्वारा यह महसूस हुआ कि यह दृश्य उनके लिए एक नये ही प्रकार का था। मुझे किंग्सली हाल का पहला उद्देश्य याद आया—'आखिर में अनजान मनुष्य दूसरे अजनबी मनुष्य को अपना भाई समझेगा और किसी अनजान आँखों में अपनी बहन की झाँकी देखेगा।'

थोड़ी देर बाद मैंने कहा,—"वहाँ एक अंधी बहन हैं, उनके साथ आप बात करें।" यह कहकर मैं गांधीजी को कमरे के पहले सिरे पर ले गई, जहाँ वह एक ही ऐसी व्यक्ति खड़ी थी जो उन्हें नहीं देख सकती थी। गांधीजी ज्योंही

मेरे पीछे चले त्योंही संगीत रुका, उछल-कूद बन्द हुई और कार्यक्रम खत्म हुआ। लोग अपने को वश में न रख सके। गांधीजी को देखने की उनकी उत्कट अभिलाषा थी।

एकाएक मानो बाइबिल की सुनहरी कहानी का दृश्य सामने आ गया। गांधीजी उस अंधी बहन से ज्योंही बात करने लगे त्योंही लोग नजदीक आ गये। वे बहुत धीरे और शान्ति से आगे बढ़े। जवान माता-पिता गांधीजी के अधिक समीप आ गये। वे बहुत ही खुश थे। नजदीक आकर उन्होंने अपने बच्चों को इसलिए आगे किया कि गांधीजी उनके सिर पर हाथ रखें। उन्होंने सभी बच्चों को आशीर्वाद दिया, और एक बच्चे को उठाया भी। उस रात उस दीवान-खाने के सभी लोगों की आँखों में आश्चर्य और मन में गहरी शान्ति तथा सम्पूर्ण सन्तोष के भाव फैल गये।

गांधीजी और बच्चे *

(७)

'मैंने मि० गांधी को ऊपर की छत पर देखा। उन्होंने हमें देखकर हाथ हिलाया था।' बालक जानी ने कहा और उसके साथ अनेक उत्कंठित बालकों की आवाज़ भी मिल गईः—'मैंने भी उन्हें देखा। मैंने भी उन्हें देखा।'

थोड़े ही समय में बच्चों के दो दल हो जाते हैं—जिन्होंने गांधीजी को देखा है, उनका एक दल; और जिन्होंने नहीं देखा, उनका दूसरा दल। दूसरे दल का हरेक बालक पहले दल में शामिल होने की कोशिश कर रहा था।

बालक-बालिकाएँ स्कूल से घर आते हैं, और किंग्सली हाल की छत के सामने ऊँची गरदन कर टकटकी लगाये रहते हैं। वे जानते हैं कि गांधीजी का कमरा ऊपर है। कभी-कभी गोलमेज़-परिषद् के एक-दो सदस्य गांधीजी के उस कमरे में आते हैं और बात-चीत करते-करते जब छत की बन्नी के पास आकर नीचे इकट्ठे हुए इन बच्चों की तरफ झाँकते हैं, तो उन्हें अपार हर्ष होता है। परन्तु जब हमारे मान्य अतिथि इन बच्चों की ओर देखकर प्रेम से अपने हाथ हिलाते हैं तब तो सचमुच इन बच्चों की विजय होती है, और वे फूले नहीं समाते।

वह दिन चिर-स्मरणीय रहेगा, जिस दिन इन बच्चों को गांधीजी से मिलने के लिए किंग्सली हाल में बुलाया गया था। उस दिन बाह्य शिष्टाचार कुछ था ही नहीं। गांधीजी इन बच्चों के एक मित्र की तरह ही ओक के तख्ते की फर्श पर बैठे और बच्चों ने उन्हें चारों तरफ से घेर लिया। बड़ी बहनें अपने छोटे भाइयों को आगे खिसकाने लगीं और बड़े भाई अपनी छोटी बहनों को आगे सरकाने लगे। क्योंकि

---

* यह लेख मिस डोरिस लिस्टर ने, जो बो में बाल-मन्दिर चलाती हैं, और म्युरियल लिस्टर की बहन हैं, लिखा था।

पूर्व-लन्दन की इस रानी के बच्चे अपने छोटे भाई-बहनों का ख्याल रखने के आदी हो गये हैं।

बच्चों का ध्यान तो अब उनके बीचो-बीच बैठी स्नेह-भरी आँखों वाली और श्वेत वस्त्रधारी आकृति पर एकाग्र हो गया था। गांधीजी की दलीलों को उत्कण्ठा-पूर्वक समझने की वे कोशिश कर रहे थे। गांधीजी कह रहे थे, – "जब कोई लड़का तुम्हें मारता है, तब तुम क्या करते हो? उसके बाद क्या होता है? इससे अच्छा रास्ता और कोई हो सकता है?"

वे जो कुछ कह रहे थे, उसमें विनोद की झलक के साथ एक तरह का आह्वान भी था। बच्चों का सिद्धान्त चपत के मुकाबले चपत और मुक्के के मुक़ाबले में मुक्का लगाने का होता है, अतः गांधीजी उनकी बारीकी से जाँच कर रहे थे और उस समय उनकी आँखें अजीब प्रतिभा से चमक रही थीं।

गांधीजी की इस एक घण्टे की खेल-कूद में जेन नाम की एक चार वर्ष की बालिका भी हाज़िर थी। इस खेलकूद के अगले सप्ताह उसका पिता आया और उसने गांधीजी से कहा,—"मुझे आपके साथ लड़ना है।" "क्यों लड़ना है?" गांधीजी ने हँसते हुए पूछा। गांधीजी को जब यह मालूम हो जाय कि कोई उनकी टीका कर रहा है या उनसे विनोद कर रहा है, तो वे एकदम आतुर हो जाते हैं और खूब ही खुश होते हैं। आगन्तुक भाई ने कहा, – "देखिये न, मेरी छोटी लड़की जेन रोज बड़े सबेरे आकर मुझे मारती और जगाती है; कहती है—"अब आप मुझे इसके बदले में मारना नहीं, क्योंकि मि० गांधी ने हमें उस दिन कहा था कि यदि तुम्हें कोई मारे तो तुम्हें उसके बदले में मारना नहीं चाहिए।"

सभी बच्चे बहुत खुश हुए और उन्होंने जवाब देना शुरू किया। इस बीच गांधीजी की दलीलों का एक भी पहलू वे भूले नहीं। थोड़ी ही देर में छोटी-छोटी चमकती आँखोंवाली एक छोटी-सी शान्ति-सेना तैयार हो गई और उन्होंने गांधीजी को घेर लिया। इन संवादों का असर बहुत समय तक रहेगा।

छोटे-छोटे बच्चे भी अपने को गांधीजी का दोस्त बताते। छोटा पीटर सिर्फ साढ़े तीन वर्ष का है। वह रसोई-घर में चक्कर लगाते-लगाते चिल्ला रहा था,—"बुड्ढे

गांधी, बुड्ढे गांधी।" माँ ने उसे रोका—"ना पीटर। बुड्ढा गांधी नहीं कहते। मि० गांधी बहुत दयालु हैं, उन्हें मि० गांधी कहना चाहिए।"

पीटर थोड़ी देर रुका। उसके चेहरे पर असन्तोष का भाव था। "नहीं, मि० गांधी नहीं।" उसने जवाब दिया। इसके बाद एकदम उसका मुँह प्रसन्नता से चमक उठा। "गांधी काका !! माँ, मैं उन्हें गांधी काका कहूँगा।" और आखिर में उसने "गाँधी काका ! गांधी काका" चिल्लाते हुए रसोईं-घर गुँजा दिया।

थोड़े दिन बाद जब गांधीजी बाल-मन्दिर देखने आये, तब पीटर ही था जिसने उनका स्वागत किया। यह सुनते ही कि गांधीजी बाल-मन्दिर देखने आने-वाले हैं, बहादुर और होशियार बच्चे बाल-मन्दिर के दरवाजे पर गांधीजी का स्वागत करने के लिए पहुँच गये। उनके आते ही पीटर ने 'गांधी का······का' चिल्लाते हुए उनका स्वागत करना शुरू किया। उसके साथ दूसरे बच्चे भी शरीक हो गये।

उन्होंने सगर्व अपनी आल्मारी और खिलौने दिखाये। स्नानागार दिखाया। उसमें नहाने के छोटे-छोटे टब, छोटे और नीचे लगे हुए मुँह धोने के हौज़ और छत्तीस छोटी-छोटी खूँटियाँ भी इन्होंने बड़े चाव से दिखाईं। हर खूँटी पर एक-एक चित्र की निशानी थी। इन्हीं चित्रों द्वारा टोनी और जिन, जिन्हें अभी तक अपना नाम पढ़ना नहीं आता था, वे जहाज़, रीछ या जंगली गुलाब, जो कुछ उनकी अपनी निशानी थी, उसे देखकर अपनी खूँटी पहचानकर अपना सामान ले लेते थे। पर गांधी काका को तो सबसे अधिक आनन्द छोटे-छोटे ३६ ब्रश देख-कर ही हुआ।

ब्रायन जब अपना ब्रश और प्याला लेकर दाँत साफ करने लगा तब गांधीजी बोल उठे,—"अहा ! कितना सुन्दर !"

कुछ बच्चे जब कोई अजनबी आदमी देखते हैं तो शर्मा जाते हैं, इसलिए कुछ ने पहले-पहल लाज के मारे अपना मुँह ढक लिया। परन्तु उनकी यह शर्म ज़रा-सी ही देर में ग़ायब हो गई, और आनन्द से किलकारियाँ मारते हुए उन्होंने गांधीजी को घेर लिया।

गांधीजी जब जाने लगे तो बच्चों को दुःख हुआ। परन्तु बाहर लोगों का झुण्ड उनकी राह देख रहा था, फिर भी वे थोड़ी देर और वहाँ रुके और बच्चे उन्हें अपना क्रीड़ांगण दिखाने ले गये। पूर्व-निश्चित कार्य-क्रम में यह बात नहीं थी। परन्तु ज्योंही किसी बालक के मन में यह विचार उठा कि उसने इसका अमल किया। विवेक-विचार से कार्य करनेवाले हम बड़ों में से तो किसी को इस बात का ख्याल भी नहीं था। क्रीड़ांगण में बच्चों ने गांधीजी को अनेक खेल बताये। कुछ दिन पहले बच्चों के लिए ऊपर से सरकने का एक चिकना तख़्ता लगाया गया था। एक-एक घण्टे के क्रम से बच्चे उसकी सीढ़ी के सामने पंक्ति लगाकर खड़े रहते हैं; क्योंकि ऊपर जाकर वहाँ से ताज़ी और ठंडी हवा का आनन्द लेना बहुत देर में और बहुत कम मिलता है। गांधीजी ने सब कुछ देखा और उन्हें इन बालक-बालिकाओं के साथ अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया।

× × ×

जिस दिन गांधीजी हमारे गली के घरों को देखने आये थे, उससे अगले दिन बालक-बालिकाओं में ख़ूब ही स्पर्द्धा जम गई थी।

"गांधी काका मेरे घर आये थे।"

"वे जेरी के रसोई-घर में गये थे।"

"हाँ, हाँ, उन्होंने ब्रायन की माँ से बातचीत भी की थी, मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

"मुझे मालूम है, उन्होंने हमारी रसोई के चूल्हे को भी देखा था।"

गांधी काका हमारे घर में क्या आ गये, उन्होंने तो सचमुच हमारे हृदय में सदा के लिए अपना स्थान बना लिया है।

दूसरे सप्ताह उनका जन्म-दिन था। जन्म-दिन मनाने के लिए हम लोग बाल-मन्दिर में हमेशा मोमबत्ती जलाते हैं, और कभी-कभी केक भी मँगाते हैं। गांधी काका ऐसे सुन्दर जलसे के आनन्द में भाग लें, इसके लिए हम लोग बहुत ही आतुर थे।

उसके जन्म-दिन के एक दिन पहले हम लोग ऊपर की छत पर एकत्र हुए।

तीन-चार वर्ष के सभी बच्चे हाज़िर थे। दो वर्ष के बच्चे अपने-अपने खिलौनों से खेल रहे थे। हमने उक्त विषय पर बात शुरू की। हम सब लोगों को बहुत-कुछ कहना था। आखिर हम लोगों ने यह निश्चय किया कि उन्हें एक पत्र लिखा जाय और साथ में उनको जन्म-दिन की भेंट भी भेजी जाय।

जोन—"क्या वे यहाँ आयेंगे ?"

डेविड—"वे हमारे साथ भोजन करने नहीं आयेंगे ?"

जोन—"मैंने उन्हें सिरील की अगली खिड़की में से देखा था।"

बरनार्ड—"वे जिराल्ड के घर गये थे।"

मॉरिस—"जब वे मेरे यहाँ आये थे, तब मैंने उन्हें अपने सभी खिलौने दिखाये थे।"

जोन—"मैं उन्हें मि० गांधी कहता हूँ।"

पीटर—"मैं उन्हें गांधी काका कहता हूँ।"

फिर हम सबने कहा,—"हम उन्हें कुछ भेजें।"

किसी ने कहा—"हम उन्हें खिलौने का कुत्ता भेजें ?"

एलिस—"सफ़ेद छोटा कुत्ता, क्यों ?"

हम सबने कहा—"हाँ, वही छोटा, सफ़ेद कुत्ता।"

फिलिस—"हम लोग उन्हें एक जोड़ा जूते क्यों न भेजें ?" (हमने उनके खुले चप्पलवाले पैर देखे थे और उन्हें सरदी लगती होगी, ऐसा हमें महसूस हुआ था।)

एलिस—"हम उन्हें गरम स्वेटर और जाँघिया क्यों न भेजें ?"

डोरीन—"मैं केक खरीदकर उन्हें भेजूँगा।"

बरनार्ड—"मैं पालने में झूलता हुआ छोटा बच्चा खरीदकर उन्हें भेजूँगा।"

हमने उन्हें यह पत्र लिखा :—

"प्रिय गांधी काका,

आपकी वर्ष-गाँठ सुख से गुजरे। हम सभी यह चाहते हैं कि आपकी वर्ष-गाँठ अच्छी गुजरे। हम आपकी वर्ष-गाँठ का गीत गानेवाले हैं। हम आपको एक भेंट भेजनेवाले हैं। आपको वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में आइसक्रीमवाली केक भेजी जाय

तो कितना सुन्दर हो! आप अपनी वर्ष-गाँठ के दिन यहाँ आना। हम बैंड पर तरह-तरह गानों के सुर बजायेंगे और मोमबत्तियाँ भी जलायेंगे।

हम हैं आपके प्रिय-पात्र—मॉरिस, स्टेनली, पीटर, जोन, जिन, एलिस, जोन, बरनार्ड, जोन, विली, फिलिस, डोरीन, डेविड। अन्य सभी छोटे बच्चों का और हम सबका प्यार स्वीकार हो।"

इस पत्र के साथ हमने एक टोकरी भी भेजी जिसमें दो सफेद ऊनी कुत्ते, वर्ष-गाँठ की तीन गुलाबी मोमबत्तियाँ, एक टीन की तश्तरी, एक भूरे रंग की पेन्सिल और थोड़ी-सी मिठाई भी रख दी थी।

उन दिनों म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों में दस बरस के लड़कों को गांधीजी पर निबन्ध लिखने को कहा गया था। हमारे बाल-मन्दिर के विली सेविल नामक एक दस वर्ष के विद्यार्थी ने जो निबन्ध लिखा था, वह भारत के अनेक पत्रों में छपा था। निबन्ध इस प्रकार था:—

"मि० गांधी भारतीय हैं। १८९० में वे लन्दन में कानून का अभ्यास करते थे। अपने देश को सुखी बनाने के हेतु उन्होंने वह छोड़ दिया।

वे विलायत, गोलमेज़-परिषद् में भारत का व्यापार पुनः प्राप्त करने के लिए आये हैं। 'ब्राह्मण' 'हरिजनों' को अपने मन्दिरों में आने दें, ऐसी वे कोशिश कर रहे हैं। हिन्दुस्तान में लगभग साठ लाख लोग ऐसे हैं, जिन्हें अच्छे भोजन की खबर ही नहीं। गांधीजी ने अपनी सारी सम्पत्ति का त्याग कर दिया है और भारत के गरीब-से-गरीब लोगों की तरह रहते हैं। इसीलिए वे कच्छ पहनते हैं।

बकरी का दूध, फल और शाक उनकी मुख्य खुराक है। वे मांस-मछली नहीं खाते, क्योंकि वे किसी का जीव नहीं लेना चाहते। गांधी भारतीय ईसाई हैं।

"मि० गांधी स्वयं सूत कातते हैं। वे इंग्लैण्ड में भी एक घण्टा कातते हैं। अभी-अभी वे लंकाशायर की सूती मिलें देखकर आये हैं।

वे रविवार की शाम को सात बजे से सोमवार की शाम को सात बजे तक प्रार्थना करते हैं, और इस समय उनके साथ यदि कोई बोले तो वे जवाब नहीं देते। वे जब मुलाक़ात के लिए बाहर निकले थे, तब मेरे घर आये थे। मेरी माँ कपड़ों पर इस्तरी

कर रही थीं। पर गांधीजी ने कहा,—"काम बन्द न करो, क्योंकि मुझे भी ऐसा ही करना पड़ता है।" मैंने उनके साथ हाथ मिलाया है। 'हलो' अथवा 'गुडबाई' की जगह भारतीय शब्द 'नमस्कार' है।"

गांधीजी जब लन्दन से भारत की ओर चले, तब उन्होंने अपने सामान के प्रति बहुत ही चिन्ता प्रकट की और कहा कि बच्चों द्वारा दिये गये खिलौने सुरक्षित रहने चाहिएँ। वैसे तो उन्हें इससे अनेक क़ीमती चीजें भेंट-स्वरूप मिली थीं, परन्तु उन्हें तो उन्होंने अपने रिवाज के मुताबिक उसी समय दे दी थीं। परन्तु बच्चों द्वारा दिये गये ये खिलौने तो उनकी खास सम्पत्ति मालूम होते थे; ये खिलौने किसी को नहीं दिये जा सकते। जब वे जेल में थे तब हमें यह पत्र मिला, इसे हम एक अमूल्य वस्तु समझकर हमेशा के लिए सुरक्षित रखेंगे।

"मेरे प्यारे छोटे दोस्तो,

मैं अनेक बार तुम सबको याद करता हूँ। उस दिन दोपहर को हम सब एक साथ बैठे थे। उस समय तुम लोगों ने मेरे सवालों का जवाब जिस चपलता से दिया था, वह अभी तक मुझे अच्छी तरह याद है।

मुझे तुमने जिस प्रेम से भेंट भेजी थी, उसका आभार-दर्शक पत्र मैं किंग्सली हॉल से ही लिखना चाहता था, मगर मुझे समय नहीं मिला। अब मैं यह पत्र जेल से लिख रहा हूँ।

तुम्हारी इन भेटों को मैं अपने आश्रम के बच्चों तक पहुँचाना चाहता था, पर मैं आश्रम पहुँच ही नहीं सका।

तुम्हें मैं जेल से पत्र लिखूँ, यह तुम्हारे लिए एक विनोद की चीज़ नहीं है? मैं जेल में तो हूँ, परन्तु मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं क़ैदी नहीं हूँ। मैंने कोई बुरा काम किया है, मेरा मन इसकी गवाही नहीं देता।

छोटे-बड़ों को मेरा प्यार।

तुम्हारा,

२०—१—३२] वही जिसे तुम गांधी काका कहते हो।"

हमारे भ्रमण

(८)

गांधीजी जिस दिन लन्दन आये उसके दूसरे रविवार के दिन हम लन्दन से बाहर गये। वहाँ के भारी शोर-गुल और दौड़-धूप के बाद गाँवों की 'स्वच्छ हवा और गाँवों के दृश्य हम सबको बहुत ही अच्छे लगे। हमने श्रीमती इलियट हावर्ड का निमन्त्रण स्वीकार किया था। इनका घर एपिंग के जंगलों के साथ था। हम मोटर द्वारा रवाना हुए। सुबह का सुहावना समय धूपवाली पगडंडियों पर घूमने में व्यतीत हो गया। हमारी मण्डली को घूमते देखकर अन्य लोग आश्चर्य-चकित हो जाते। हममें तीन कद्दावर हिन्दू, चार-पाँच अंग्रेज़ स्त्री-पुरुष और इन सबके बीच छोटे, पतले, पर मजबूत और फुर्तीले गांधीजी नज़र आ रहे थे। दोपहर के भोजन के बाद दो घण्टे बातचीत हुई। उस समय देश-भर के शान्ति-प्रिय नेता हाज़िर थे।

अधिकतर रविवार के दिन गांधीजी ने लन्दन से बाहर अपने भिन्न-भिन्न मित्रों के साथ रहकर ही व्यतीत किये।

कैंटरबरी में वहाँ के डीन का आतिथ्य हमने ग्रहण किया। और यही मुलाक़ात हमें सबसे अधिक पसन्द आई। गांधीजी को उस पुराने शहर की सुन्दरता, गिरजाघरों की शान्त-विनम्र प्रार्थना और यजमान के घरेलू जीवन की सादगी बहुत ही अच्छी लगी।

इसके बाद शनिवार-साँझ के अपने काम को एक और सज्जन को सौंपकर मैं अपने मान्य मेहमानों के साथ चिचेस्टर के लिए रवाना हुई। हम जब वहाँ पहुँचे तब अँधेरा हो गया था। पड़ाव आने का समय होते ही मोटर की अगली सीट पर बैठे सार्जन्ट एवन्स ने हमेशा की तरह गांधीजी को जगाने का इशारा किया।

यह छोटा-सा शहर बहुत ही शान्त नज़र आ रहा था। परन्तु एक मोड़ के आते ही हम लोग उत्साह से भरपूर, जोर से चिल्लाते हुए एक जुलूस में घिर गये। जुलूस के आगे-आगे जोर से बाजा बज रहा था। मैंने समझा, यह भी कोई बेकारों का जुलूस होगा। परन्तु लोगों का उत्साह और शोर उत्तरोत्तर बढ़ता गया और जब मोटर धीमी पड़ी तब यह मालूम हुआ कि यह जुलूस न तो किसी सभा-समिति के लिए है और न किसी तरह के प्रचार के लिए, यह तो लोगों ने अपने-आप अपने मान्य-अतिथि के सत्कार के लिये आयोजित किया था। चिचेस्टर के बिशप और उनकी पत्नी श्रीमती बेल ने अपने मेहमानों की रुचि के अनुसार सभी व्यवस्थाएँ की थीं। वह बगीचा, वह मोड़वाली मजबूत दीवार और उस पर फैली हुई बेलों की मनोहरता हममें से कोई भी भूल नहीं सकता। हमसे पीछे आनेवाली दूसरी मोटर के यात्रियों ने तो मोटर में ही सात बजने पर प्रार्थना कर ली थी, पर जब यजमान का सत्कार खत्म हुआ और हम लोग दीवानखाने की जमीन पर प्रार्थना करने बैठ तो वे लोग भी उसमें शामिल हो गये। रात के भोजन के बाद यही दीवानखाना उस जगह के ऊँचे ओहदेवाले धर्माधिकारियों से खचाखच भर गया, और बहुत देर तक सवाल-जवाब होते रहे।

दूसरे दिन यानी रविवार को हम जिस जल-प्रवाह के किनारे-किनारे घूमने गये थे, वह बहुत धीरे-धीरे बह रहा था। हमारा वह आदर्श रविवार भी उसी धीर-गंभीर शान्ति से गुजरा। हम लोग भी सुबह के नाश्ते के बाद चारों तरफ़ दीवार से घिरे बगीचे में सूरज के प्रकाश में धीरे-धीरे घूमे। इसके बाद धीरे-धीरे हम लोग प्राचीन मीनारों पर चढ़े और आखिर में उस प्राचीन परकोटे की दीवार पर भी फिरे। दोपहर बाद गिरजाघर की प्रार्थना में शामिल हुए। इस ऐतिहासिक जगह में घूमने से हमें समृद्धि, शान्ति, बल और ज्ञान प्राप्त हुआ।

इसके बाद का रविवार गान्धीजी ने एटन और आक्सफोर्ड में गुजारा। एटन में विद्यार्थियों के प्रमुख ने गांधीजी को स्कूल के क्लब में भाषण देने को बुलाया था।

सबसे प्रथम सवाल पूछा गया,—'क्या आप हमें हिन्दुओं के पक्ष के बारे में कुछ समझा सकेंगे?'

उत्तर में गांधीजी ने कहा —'तुम लोगों का इंग्लैण्ड में बहुत बड़ा स्थान है। भविष्य में तुम लोगों में कोई तो प्रधान-मंत्री बनेगा और कोई सेनापति। यह समय तो तुम्हारे चरित्र-गठन का है, इसलिए तुम लोगों के हृदय में प्रवेश करना चाहता हूँ। तुम्हें जो गलत इतिहास पढ़ाया जाता है, उसकी कुछ वास्तविक बातें तुम्हारे सामने रखना चाहता हूँ। मैं यहाँ के उच्च अधिकारियों में अज्ञान की झलक देख रहा हूँ। यहाँ अज्ञान का मतलब ज्ञान का अभाव नहीं, परन्तु गलत पहलुओं पर रचा हुआ ज्ञान है। इसलिए मैं तुम्हारे सामने इतिहास के असली मुद्दे रखना चाहता हूँ, क्योंकि मैं तुम्हें साम्राज्य-शासक नहीं मानता। अपितु, मैं तो तुम्हें उस राज्य की प्रजा मानता हूँ जो दूसरे राष्ट्रों को लूटता नहीं, और शस्त्रबल से नहीं, किन्तु अपने नैतिक बल पर संसार में शान्ति का रक्षक बनना चाहता है। इसलिए मैं तुम लोगों से कहना चाहता हूँ कि मेरी नज़रों में तो हिन्दू जैसा कोई पक्ष है ही नहीं, क्योंकि मेरे देश की आज़ादी के बारे में तो तुम्हीं लोग मुझसे अधिक हिन्दुत्व लिए हुए हो।

हिन्दू-महासभा के प्रतिनिधि हिन्दू-पक्ष रखते तो अवश्य हैं और वे यह भी दावा करते हैं कि वे हिन्दू-मानस का प्रतिनिधित्व करते हैं, परन्तु मैं कहता हूँ कि वे सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। वे इस समस्या का हल राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से करना चाहें तो भी उन्हें सच्चा प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसके पीछे उनका व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। मेरी नजरों में यह एक विनाशक नीति है। मैं उन्हें समझाता हूँ कि 'आप बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए आप लोगों को अधिक नम्र होकर छोटी-छोटी क़ौमों को, जो कुछ वे माँगे, देना चाहिए। इस तरह से देश का गन्दा वातावरण जादू के चमत्कार की तरह साफ हो जायगा। न तो ये लोग यह जानते हैं कि विशाल सर्वसाधारण जनता की सम्मति क्या है और वे क्या चाहते हैं? परन्तु मैं अपने इतने सालों के भ्रमण के अनुभव से यह डके की चोट पर कह सकता हूँ कि उन्हें असेम्बली की बैठकों और सरकारी ओहदों जैसी नगण्य चीजों से कोई दिलचस्पी नहीं है। क़ौमी झगड़े का यह भूत शहरों में ही फैला हुआ है। और हिन्दुस्तान शहरों ही में तो नहीं है। हिन्दुस्तान के शहर तो इंग्लैण्ड तथा

अन्य पाश्चात्य देशों की तलछट हैं। ये जाने-अनजाने गाँव का शिकार करते हैं और इग्लैण्ड के दलाल बनकर गाँवों को लूटने में आप लोगों के हिस्सेदार बनते हैं। हिन्दुस्तान की आज़ादी के सवाल को जो अंग्रेज़ प्रधान-मन्त्री इरादतन इतना दूर रखते हैं, उस सवाल के मुक़ाबले में इन सवालों का कोई महत्त्व ही नहीं है। वे इस बात को जान-बूझकर भूल जाते हैं कि असन्तुष्ट और विद्रोही भारत को वे अधिक दिन तक गुलाम नहीं रख सकेंगे। हम मानते हैं कि हमारा विद्रोह अहिंसक है, पर उसे विद्रोह तो कहा ही जायगा।

"आज भारत की जनता को अनेक रोग क्षीण कर रहे हैं, पर इन सब रोगों का मूल कारण तो उसकी गुलामी ही है। और यदि राज्य-शासन की समस्या का सन्तोष-जनक हल हो जाय तो ये साम्प्रदायिक दंगे तुरन्त ही अदृश्य हो जायँ। जिस क्षण हमारे देश से परदेशी कूड़ा-करकट निकल जायगा, उस दिन सभी क़ौमें एक हो जायँगी। इसलिए हिन्दू-पक्ष जैसा तो कुछ है ही नहीं और अगर हो तो उसे मिटा ही देना चाहिए। अगर तुम ऐसे सवालों का अभ्यास करोगे, तो तुम्हें इसमें कुछ भी न मिलेगा। यदि तुम इन साम्प्रदायिकता की उत्तेजना-पूर्ण बातों को जानोगे, तो यही कहोगे कि ये लोग टेम्स नदी में डूब मरें तो अधिक अच्छा हो।

"जब मैं आप लोगों को यह कह रहा हूँ कि कौमी सवाल का झगड़ा तो है ही नहीं, और उस बारे में आप लोगों को चिन्ता की भी आवश्यकता नहीं ; तब आप लोगों को यही समझना चाहिए कि मेरे वाक्य पत्थर की लकीर हैं। तो भी आप लोग इतिहास का अभ्यास करें और उसमें भी इस बात का ख़ास तौर से अभ्यास करें कि करोड़ों लोगों ने अहिंसा स्वीकार करने का निश्चय किस तरह किया और वे उस पर किस तरह डटे रहे। मनुष्य के पशु-स्वभाव, और उनके जंगली कायदों का अभ्यास न करो, अपितु मनुष्य की आत्मा के अक्षुण्ण ऐश्वर्य का अभ्यास करो। साम्प्रदायिक झगड़ों में पड़े हुए लोग पागलखाने के मनुष्यों की तरह हैं। आप लोगों को तो ऐसे मनुष्यों का निरीक्षण करना चाहिए जो अपने देश की स्वतंत्रता के लिए किसी को हानि पहुँचाये बग़ैर अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं। उच्च कोटि के मनुष्यों की आत्मा की आवाज और प्रेम-धर्म का अनुसरण करनेवाले

मनुष्यों का अध्ययन करो ; ऐसा करोगे तो तुम अपने भविष्य को बड़ा होने तक बहुत कुछ सुधार लोगे। यह कोई गर्व का विषय नहीं है कि तुम्हारा देश हम पर शासन कर रहा है क्योंकि गुलामों को बाँधनेवाला क्या कभी बाँधा नहीं गया? भारत और ब्रिटेन के बीच आज तो सम्बन्ध है, वह अतिशय पापमय और अस्वाभाविक है। इसलिए मैं अपने स्वाभाविक और जन्मसिद्ध कार्य की पूर्ति में आप लोगों की मदद चाहता हूँ। हमने जो कष्ट सहें हैं और तपस्या की है, उससे हमारा अपनी स्वतंत्रता पर दुगुना अधिकार हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि जब आप लोग बड़े हों, तब अपने देश को लूटने की प्रवृत्ति से दूर करें और उसकी कीर्ति को बढ़ावें। इस तरह आप लोग मनुष्य-जाति की प्रगति में भी अपना हाथ बटायें।'

दूसरे दिन गांधीजी मोटर द्वारा आक्सफोर्ड गये। वहाँ हम लोगों ने बेलियल कालेज के आचार्य और उनकी पत्नी श्रीमती लिंडसे का आतिथ्य ग्रहण किया। शाम को गांधीजी ने विश्व-विद्यालय की ठसाठस भरी हुई सभा में व्याख्यान दिया।

एक भारतीय विद्यार्थी ने गांधीजी से पूछा,—"आपको अब भी इंग्लैंड की साफ-दानत पर भरोसा है?"

गांधीजी ने कहा,—"मुझे मनुष्य-स्वभाव की प्रामाणिकता पर जितना विश्वास है, उतना ही इंग्लैंड की साफ-दानत पर भी है। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि मानव-जाति की प्रवृत्ति अधिकतर मनुष्य-जीवन को ऊपर उठानेवाली होती है। और यही कारण है कि प्रेम-धर्म का इतना अधिक गूढ़ परिणाम और असर होता है। मानव-जाति का इतनी देर कायम रहना इसी बात का सूचक है कि विनाश की अवधि से जीवन की अवधि बड़ी है। और मैं तो सिर्फ प्रेम का ही काव्य जानता हूँ; इसलिए मैं अंग्रेज़ जनता पर विश्वास करता हूँ, इससे आप लोगों को आश्चर्य में नहीं पड़ना चाहिए। मैंने अनेक बार कटुवचन कहे हैं, और मैंने अनेक बार मन में कहा है—'इस आफत का अन्त न जाने कब होगा? ये लोग गरीबों का शोषण न जाने कब बन्द करेंगे?' परन्तु उसी समय मेरे हृदय से आवाज़ आती है—'इन लोगों को यह बपौती रोम-साम्राज्य से मिली है!' मुझे तो प्रेम-धर्म पर ही चलना है और

यही आशा रखनी है कि अंग्रेजों के हृदय पर प्रेम-मार्ग का असर तो होगा, लेकिन देर से।"

रविवार की सुबह हम नजदीक की बोर्स हिल पर स्थित मि० एडवर्ड टामसन के घर गये। वहाँ एक ऐसी विद्वन्-मण्डली से मिलना था, जो भारतीय-समस्या में खूब दिलचस्पी लेती थी। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि गांधीजी ने इस सभा तथा उसी दिन दोपहर को डा० लिंडसे द्वारा आयोजित चालीस-पचास मित्रों की एक सभा में अनेक महत्वपूर्ण और नई बातें कहीं। उन्होंने भूल करने की स्वतन्त्रता माँगी और कहा,—"संक्षेप में आप यों क्यों नहीं कहते कि आप हम पर विश्वास न करें। हमें भूल करने की स्वतंत्रता दो। हम यदि आज अपना घर नहीं सँभाल सकते तो यह कौन कह सकता है कि हम कब उसके लिए समर्थ होंगे? इसकी अवधि भी आप निश्चित करें, यह मैं नहीं चाहता। जाने-अनजाने आप लोग ईश्वर का पार्ट अदा कर रहे हैं। मैं कहता हूँ कि आप लोग इस सिंहासन से एक क्षण के लिए नीचे उतरें। हमें आप हम पर ही छोड़ दें। आज एक छोटे-से राष्ट्र के नीचे सारी दुनिया की मानव जाति को दबा हुआ होना—इससे बदतर किसी हालत की कल्पना ही नहीं हो सकती।"

किसी ने पूछा—"आप भारत को साम्राज्य से कितनी दूर रखेंगे?"

"साम्राज्य से पूरा-पूरा दूर; पर ब्रिटिश जनता से बिल्कुल नहीं। ब्रिटिश-साम्राज्य केवल हिन्दुस्तान के लिए ही साम्राज्य है। इस सम्राट्-पद का नाश होना चाहिए। यदि यह नष्ट हो जाय, तो मैं खुशी से ब्रिटेन के साथ बराबर का हिस्सेदार हो जाऊँ और उसकी तमाम आबादियों के सुख-दुःख में पूरा-पूरा हिस्सा बँटाऊँ। परन्तु यह हिस्सेदारी बराबरी की होनी चाहिए। मुझे तो अंग्रेज़-सरकार से सबन्ध तोड़ना है, ब्रिटिश जनता से नहीं। मैं एक अंग्रेज को भारत का प्रधान-मंत्री चुनने की कल्पना भी कर सकता हूँ। हमें आप लोगों की एक मित्र के नाते आवश्यकता है। आप लोग शिमला की ऊँची चोटी से उतर आयें तो कितना अच्छा हो!! आप लोग वहाँ पाँच हज़ार फीट ऊँचे आकाश में विराजमान हैं, जब कि भारतीय जनता इधर बेहाल हो रही है। आप लोगों को जब यह अच्छी तरह मालूम हो

जायगा कि इंग्लैण्ड ने हम पर क्या-क्या सितम ढाये और ग़ैरइन्साफ़ी की है, तो आप लोगों को "ब्रिटेन समुद्र का राजा है" वाला गीत गाते हुए ज़रा भी गर्व का अनुभव न होगा। अंग्रेज़ी पाठ्य-पुस्तकों में जो पाठ आज आप लोगों में गर्व उत्पन्न कर रहे हैं, कल वे ही पाठ शर्म पैदा करेंगे। अन्य राष्ट्रों की हार अथवा मानहानि करने में आज जो आपको गर्व होता है, वह आपको छोड़ना पड़ेगा।"

कुछ और भ्रमण

(१)

गोलमेज़-परिषद् के समाप्त होते ही गांधीजी के एक अंग्रेज़ मित्र ने लायड जार्ज को पत्र लिखा था कि 'गांधीजी की आपसे मिलने की बहुत इच्छा है।' परन्तु मि० लायड जार्ज की बीमारी ने इस मुलाक़ात में बाधा डाली। इसलिए जब वे सीलोन के लिए रवाना हुए, उसके एक दिन पहले ही यह मुलाक़ात हो सकी।

उसी शनिवार की शाम को टेम्स नदी के दूसरे किनारे पर एक बड़े भारी सभा-गृह में गांधीजी रेडक्रॉस के कार्यकर्ताओं के सामने भाषण देनेवाले थे। वहाँ से उन्हें लेने के लिए मैं सर प्रभाशंकर पट्टणी की मोटर में गई। लन्दन में चर्ट तक के रास्ते के विषय में आखरी सूचनाएँ देने के लिए मि० लायड जार्ज के मन्त्री भी वहाँ हाजिर थे। हमारे पास सरदी के बचाव के लिए पूरे-पूरे कम्बल हैं कि नहीं, इसकी तलाश महादेव देसाई ने पहले ही कर ली थी और मीरा बहन ने गांधीजी के रात के भोजन के लिए फलों का टोकरा रख दिया।

अंगूर, खजूर, पीसे हुए बादाम आदि हम लोगों ने अपनी गोद में ही परोसे।

बापू ने कहा—'आप इसमें से थोड़ा कुछ लें।'

मैंने चाय पी ली थी और मुसाफिरी पूरी होने पर मैं भोजन करने ही वाली थी, तो भी आँखों को लुभानेवाले इन फलों को खाने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकी।

मैंने बापू से कहा,—"आपका भोजन बहुत ही अच्छा होता है। मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि मैं शीघ्र ही साध्वी हो जाऊँगी।"

बापू ने कहा,—"तुम्हें सिर्फ आहार बदलने के लिए इतनी हद तक जाने की आवश्यकता नहीं है।"

मोटर सरे परगने के रास्तों पर सर्राटे से चली जा रही थी। आखिरकार

चर्ट पहुँच कर मि० लायड जार्ज के मकान के सामने आकर रुकी। यह घर मि० लायड जार्ज ने बरसों पहले अपने लिए बनवाया था। यह बहुत ही सुन्दर जगह पर बना हुआ है। उनके घर के सामने की ज़मीन चौकोर ढालू है और ढालू ज़मीन दूर-दूर की टेकरियों तक फैली हुई है। घर और उसके चारों ओर के चीनारों के पेड़ों की जो सुगन्ध आती है, उससे इस जगह की रमणीयता और भी बढ़ जाती है।

गांधीजी के सत्कार में सिर्फ़ मि० लायड जार्ज को ही आनन्द आ रहा हो सो बात नहीं थी; उनके घर के सभी नौकर-चाकर इसमें शामिल थे। दीवानखाने में चीनार की लकड़ियाँ अँगीठी में जल रहीं थी और उसमें से चिनगारियाँ निकल रही थीं। चौड़ी अँगीठी की दोनों तरफ ये दोनों पुरुष गहरी और सुखद आराम-कुर्सियों पर बैठे थे। तीन घण्टे तक इनमें बातचीत हुई। गांधीजी ने मि० लायड जार्ज को रुपये-पैसे का झगड़ा, सेना का सवाल, हरिजनों का प्रतिनिधित्व, हिन्दू-मुस्लिम समस्या, शराब और अफ़ीम का सवाल ये सब एक-एक करके अच्छी तरह समझाया। वे बोलते जाते थे और मि० लायड जार्ज बीच-बीच में आश्चर्य के उद्गार निकालते जाते थे। ऐसा मालूम हो रहा था, मानो दो अजनबी मनुष्य पहले ही एक-दूसरे को समझे हों और अब उन्हें एक दूसरे के सम्पर्क में बहुत ही आनन्द आ रहा हो। वेल्स की राष्ट्रीय लड़ाई और १९१७ के आयरिश-विद्रोह से जो भारतीय आन्दोलन के प्रसंग मिलते-जुलते थे, उन पर भी बातचीत हुई।

परन्तु यदि हम इन दोनों आत्माओं की गहराई में देखें तो दोनों पुरुष एक ही कोटि के हों, ऐसा मैं नहीं मानती। वे दोनों एक ही जैसे शब्द बोलते हैं, पर क्या उन दोनों के हृदयों में उन शब्दों का एक ही अभिप्राय होता था? वे लोग क्या एक-जैसी भाषा का प्रयोग करते हैं? कष्ट-सहन की अग्नि में तपे हुए इस भारतीय ऋषि और द्रष्टा की चमचमाती अग्नि-शिखा के समान भावनाओं ने वेल्स के उस पुरुष के हृदय पर जो असर किया था, वह क्षणिक है या स्थायी? उस रात को गांधीजी से मुक़ाबला करने की अपेक्षा उनके साथ सहमत हो जाना ही अधिक सरल था।

आज़ाद हिन्दुस्तान का वह दर्शन चिरकाल तक टिकेगा ? हम लोग भले ही सन्त पुरुष हों या सामान्य पुरुष, अथवा भूतपूर्व प्रधान-मंत्री क्यों न हों, परन्तु हम लोगों में से किसमें हलके हृदय से गांधीजी का रास्ता पसन्द करने की ताक़त है। क्योंकि वे तो हम लोगों को कहते हैं,—"तृष्णा से छुटकारा पाओ, सत्ता और सुख-चैन के पीछे मत पड़ो, आपके जो असाधारण अधिकार हों उन्हें तिलांजलि दो,— दिन के प्रत्येक क्षण में ईश्वर का स्मरण करो और उसके साथ हमेशा सान्निध्य रखो। ऐसा करोगे तब ही आप लोग अकाल, कैद और हिंसा की टक्करों को झेलने की ताक़त प्राप्त कर सकोगे। इन सहन-शक्तियों का प्रयोग यदि भय और क्रोध के बगैर किया जाय तो इससे मुक्ति अवश्य ही मिलेगी।"

गांधीजी एक जल्से में लेडी एस्टर से मिले थे। इनकी यह मुलाक़ात ख़ूब जमी। दोनों ने अपनी-अपनी सन्तानों की प्रशंसा की, साथ-साथ खूब हँसे और आपस में मजाक भी की। दोनों ने यह कुबूल किया कि राजनीति में जो मतभेद हैं, वे दूर नहीं हो सकते और दुबारा मिलने का भी निश्चय किया। मुलाकात का समय युद्ध-विराम के दिन, यानी ११ नवम्बर को सुबह ११ बजे का रखा गया। उस दिन ११ बजे सुबह जो दो मिनट की शान्ति रखकर लोग ट्राफल्गर मैदान में जमा होते हैं, उसमें शामिल होने के लिए हम लोग नाइट्स ब्रिज से ठीक समय पर निकल पड़े। सार्जन्ट एवेन्स ने गांधीजी के लिए एक बड़ा-सा फूल ले लिया था। मैं यह ध्यान से देख रही थी कि शान्ति का गांधीजी पर क्या असर होता है और एक महाविपत्ति का स्मरण करते हुए हजारों नागरिक अपने बीच एक विद्रोही मनुष्य को देखकर क्या धारणा करते हैं और उसके साथ क्या बर्ताव करते हैं ?

मोटर धीमी हो गई। सवारियों के समुद्र में मोटर के रुकते ही लोगों ने गांधीजी को पहचान लिया। और स्मित-हास्य के साथ उन्होंने सत्कार के लिए हाथ ऊपर उठाये। इसके बाद तोप छूटी, भोंपू बजे ; और एकाएक जो नीरव शान्ति फैल गई, उसमें लोगों को तरह-तरह की भूली हुई स्मृतियाँ याद आ गईं। हृदय की गहराई में जो सुप्त व्यथाएँ छुपी हुई थीं वे उभर आईं, और दया तथा खेद की भावनाओं का प्रवाह चल पड़ा।

मैंने गांधीजी से कहा,—"यहाँ तो आप लोगों के एकदम बीच में थे, यहाँ तो आपको लोगों का हृदय नजर आया होगा ? वे क्षण-भर विचार में पड़ गये। बाद में बोले, "मैं इससे पहले भारत में ऐसी शान्ति देख चुका हूँ।"

मैंने कहा,—"हाँ, परन्तु वह शान्ति यहाँ जैसी नहीं होगी। अंग्रेज जब इंग्लैण्ड छोड़कर कहीं जाते हैं तो वे थोड़े बदल-से जाते हैं। बम्बई में जो युद्ध-विराम दिन मनाया जाता है, वह उच्च अधिकारियों के दबाव से मनाया जाता है। वहाँ इसे साम्राज्यवाद का एक कीमती साधन माना जाता है। पर यहाँ तो आप इसे सच्ची भावनाओं से मनाता हुआ देख रहे हैं। और यहाँ के गरीब और निराश्रित लोग भी इसे पालते हैं। चमकती तलवार और शानदार सैनिक ही तो इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि नहीं हैं।"

लार्ड एस्टर ने हमारा ठीक ग्यारह बजकर १० मिनट पर स्वागत किया। हमें पहले माले के दीवानखाने में ठहराया गया। वहाँ काफी धूप आती थी। फूलों के पौधों की शोभा भी वहाँ निराली थी। बो मुहल्ले में रहनेवाली मुझ जैसी नारी को तो यह सब देख बहुत ही आनन्द हुआ।

लेडी एस्टर ने अपने एक मित्र का हमसे परिचय कराया। ये सज्जन ईसाई-विज्ञान पर व्याख्यान दिया करते थे। इसके बाद हम लोग जिन आराम-कुर्सियों पर बैठे थे, वे बहुत ही आरामदेह साबित हुईं।

लेडी एस्टर ने मुझसे कहा,—"आप अपने इस महात्मा को इतना नहीं समझा सकतीं कि उनकी नीति कितनी खतरनाक है।" इसके बाद गांधीजी की ओर मुखातिब होकर बोलीं,—"आप तो सिर्फ नाश ही करना जानते हैं। मैं समझती हूँ, आप पाखंडी हैं, आपसे पवित्र तो मिस लिस्टर हैं। हम अंग्रेज लोग भूलें भी करते होंगे और इसमें भी कोई शक नहीं कि हम लोग अनेक हास्यास्पद कार्य भी करते हैं। परन्तु इसके मुकाबले में हम लोग अनेक बातों का सर्जन कर कुछ-न-कुछ बनाते ही रहते हैं।"

इन्होंने मज़ाक-ही-मज़ाक में अनेक बद-से-बदतर आरोप लगाये। परन्तु गांधीजी के पास भी हरेक का सचोट जवाब मौजूद था। लेडी एस्टर ने उन पर अनेक

प्रहार किये। कभी-कभी तो पहले जिस दृष्टि को ध्यान में रखकर आक्षेप किये जाते थे, अब उससे ठीक विपरीत दृष्टिकोण से आक्षेप किया जाता था और बार-बार अपने उस व्याख्याता मित्र की तरफ देखकर उनकी सहमति चाहती थीं।

लेडी एस्टर ने एक लम्बा व्याख्यान दिया। उसके खत्म होते ही गांधीजी ने कहा,—"आप अभी और कुछ कहना चाहती हैं, या मैं जो कुछ कहूँगा उसे आप ध्यान से सुनेंगी?" लेडी एस्टर ने कहा,—"मैं सुनूँगी।" गांधीजी ने कहा,—"आप प्रतिज्ञा करें कि बीच में आप दखल न देंगी। मेरे बचाव-पक्ष की बातें जब तक पूरी न हों तब तक आप अपनी टीकाओं को बन्द रखें। उसके बाद आप जो कुछ कहना चाहें, कह सकती हैं।"

लेडी एस्टर ने वचन तो दिया, पर अनेक बार भूल गईं। गांधीजी जब बोल रहे थे उस समय वे अनेक बार जोर से हँसीं और फिर माफी माँगी।

गांधीजी ने कहा,—"मैं चाहता हूँ कि आप वास्तविकताओं को पहचानें। तभी आप अपना निर्णय कर सकती हैं। आज आप सही बात से बहुत दूर हैं। आपका कहना है कि हम लोग तो सिर्फ नाश करते हैं, सृजन का तो कहना ही क्या है। परन्तु इन गत चौदह वर्षों में हमने हिन्दुस्तान में जो कुछ किया है, वह मैं आपको बताऊँ?"

इतना कहकर उन्होंने वही बात कही जो उन्हें बहुत ही प्रिय लगती है; ग्राम-सेवा और ग्रामोद्धार का काम, किसानों के उद्योगों का पुनरुद्धार, वर्ष में खेती के महीनों के अलावा जो समय किसानों का बचता है, उसमें छोटे-छोटे गृह-उद्योगों का संचालन करना, गाँव की स्वच्छता के सामुदायिक कार्य के लिए ग्रामवासियों की पंचायत का संगठन, शराब-बन्दी का प्रचार, और स्त्रियों की उस जागृति का वर्णन जिसमें उन्होंने बहादुरी से सेवाकार्य और परदे का परित्याग करना भी शामिल था, किया। यह सुनकर लेडी एस्टर नाराज हुए बिना न रह सकीं। १९३० में गांधीजी के जेल में जाने के बाद औरतों को किस तरह अपना कार्य चालू रखना चाहिए, इस विषय में गांधीजी ने जो औरतों को व्याख्यान दिया था, उसे सुनकर किसका दिल न दहल जाता?

× × ×

मिस मेरी केम्पबेल एक अंग्रेज महिला हैं, इन्होंने जीवन-भर भारतीय स्त्रियों की सेवा की है, और इसी सेवा से खुश होकर राजा ने उन्हें 'कैसरे-हिन्द' नामक तगमा भी दिया है। दिल्ली में स्वयं उन्होंने दर्शकों को आश्चर्य में डाल देनेवाले अनेक दृश्य देखे थे। परदे में रहनेवाली स्त्रियों ने ही, जो बचपन से बाहरी दुनिया में नहीं निकली थीं, अफीम और शराब की दूकानों पर धरना देने का काम सहर्ष, और बिना हिचकिचाहट के, स्वीकार किया था। इससे लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और उन्हें देखने के लिए एक खासा मानव-समुदाय जमा हो गया; पर यह भी उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इन भीरु स्त्रियों ने इससे पहले अपना मुँह अपने पति, भाई और पिता के सिवा और किसी को नहीं दिखाया था। अब वे ही असूर्य-पश्या नारियाँ ग्राहकों के सामने आतीं, उनसे बातें करतीं और उन्हें शराब छोड़ देने के लिए अनुनय-विनय करती थीं। और उनके इस कहने का लोगों पर असर भी अच्छा पड़ता था। इनकी हिम्मत देखकर पुरुष भी शर्मा जाते थे। पुरुष इन स्त्रियों को उन्हें सच्ची राह बताने के लिए धन्यवाद भी देते थे और आगे निकल जाते थे। एक-दो दिन में दूकानें उजाड़ हो गईं और उन्हें बन्द कर दिया गया। थोड़े दिनों बाद दूकान के मालिकों ने सरकार के पास एक अर्ज़ी भेजी—"क्या हम लोगों ने आगामी पूरे साल के लिए पूरे-पूरे रोकड़ा पैसे नहीं भर दिये हैं? तब हमारी दूकान की रोज की आमदनी में बाधा क्यों डाली जाती है? पुलिस को चाहिए कि वह हमारी सम्पत्ति की रक्षा करे और स्त्रियों को हटाये।" सरकार ने उनकी बातों को मंजूर किया; इससे सरकारी कर-आय में भी बहुत नुकसान होता था। इसलिए धरना देनेवाली स्त्रियों को दूकानों के सामने से हटाने के लिए दूकान के बाहर पुलिस का जबरदस्त पहरा बैठाया गया। सरकार का ऐसा पूरा निश्चय था कि इससे वे स्त्रियाँ जरूर डर जायँगी। पुलिस की लारी में घुसना, अकेले ही पुलिस थाने में जाना, और जेल-जीवन के सभी अपमानों का सहन करना क्या परदा-नशीन औरतें सहन कर सकती थीं?

दूकानें फिर खोली गईं। और मनुष्यों को उसमें शराब तथा अफीम बेचने के लिए बैठाया गया। पुलिस धरना देनेवाली औरतों को गिरफ्तार कर, लारी में भरकर

ले जाने लगी। पर इन औरतों की जगह भरने के लिए हमेशा दूसरी स्त्रियाँ आकर खड़ी हो जाती थीं। हर वक्त आनेवाली नई टोली को भी गिरफ्तार कर लिया जाता था। इस प्रकार जबरदस्त, अविचारी, कानून के धनी सरकारी नौकर एक तरफ और दूसरी तरफ नई जागृत हुई नारियों का समूह, इन दोनों असमान पक्षों में मानो विग्रह छिड़ गया। इन दोनों दलों की ताकतों में बड़ा फर्क था। एक तरफ सिर्फ पशुबल पर अवलम्बित लोगों ने मोर्चा ले रखा था। और उनके सामने जो स्त्रियों का दल था, उसके पास सिर्फ एक कष्ट-सहन का ही बल था। सिर्फ सहन-शक्ति पर आधारित इसी अबला-दल की विजय हुई। ज़बरन दूकानें खुली रखने से किसी तरह आमदनी नहीं हुई। ग्राहक शराबखानों को छोड़कर चले गये। शराब बेचनेवालों का मान समाज में घट गया, वे शरमाये और उन्होंने दूकान से शराब की बोतलें उठा लीं और वे अपनी अन्तरात्मा से समाधान करने लगे। वे बोतलों से शून्य शराबखाने में हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे रहते, और उधर दूकान के बाहर कद्दावर पुलिस और पर्दा-विहीन छोटी-छोटी स्त्रियों के दल खड़े रहते।

× × ×

गांधीजी द्वारा वर्णित इन वास्तविक घटनाओं के प्रवाह के खतम होते ही उस जगह दलीलें, विषयान्तर, अपवाद, अनुमान और तर्क-वितर्क की झड़ी बहुत देर तक कायम रही। आखिर में जब हम लोगों के जाने का समय हो आया, तब न-जाने कैसे ईश्वर के अस्तित्व के विषय पर बहुत ही गहरी बातचीत हो रही थी। हम पाँचों जनों को ईश्वर का स्मरण और ध्यान हो आया। इस विषय में दोनों पक्षों का एक-मत होना सहज था। और हम उस समय मनुष्य की सभी आशाओं के उद्गम के आधार परमात्मा तक पहुँच गये थे। इन्हीं बातों में हम लोगों ने विदा ली और एक दूसरे को पुनः मिलने के वचन दिये।

× × ×

हम जब दुबारा लेडी एस्टर के यहाँ गये थे तो उस समय गांधीजी ने चर्खा अपने साथ ले लिया था। दीवानखाने के गलीचे पर चर्खे को खोलते हुए गांधीजी ने लेडी

एस्टर से कहा,—"अब मैं आपको इसका संगीत सुनाने जा रहा हूँ, ज़रा ध्यान से सुनिएगा।" हम लोग भोजन के लिए उठे। उस समय वे अपने दैनिक नियम के अनुसार पूरा कात चुके थे। भोजन में हमारे साथ लार्ड लोथियन और ईसाई-विज्ञान के वे व्याख्याता महाशय थे, जिनका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। धर्म-श्रद्धा से बीमारियों को दूर किया जा सकता है, इस बारे में बहुत कुछ कहा गया था; मगर गांधीजी पर इसका ज़रा भी असर न हुआ। भोजन के बाद आठ बजे गांधीजी को गोलमेज परिषद् के एक निजी सलाह-मशविरे में भाग लेने के लिए डारचेस्टर हाउस जाना था। वहाँ जाते हुए रास्ते में मैंने उनसे पूछा,—"आपके अभिप्राय को बदलने की नीयत से किये गये ऐसे प्रयत्नों से क्या आपको कभी व्याकुलता नहीं होती?"

गांधीजी ने कहा—"ऐसे प्रयत्नों का मैं आदी हो गया हूँ। अनेक धर्मों के लोगों ने मुझे धर्म बदलकर अपने धर्म में मिलाने के प्रयास किये। बेशक इससे उनकी भलाई होती है। मुझे इससे बहुत ही लाभ पहुँचा है, क्योंकि ये लोग अपने-अपने धर्म की अच्छी-से-अच्छी बातें मेरे सामने रखते हैं; और वे अपना अच्छे-से-अच्छा साहित्य भी मुझे देते हैं। इन धर्मों की अच्छी-से-अच्छी बातों से मैं परिचित हो जाता हूँ और मुझे इससे बहुत ही फायदा होता है। इस तरह मैं बहुत कुछ नई बातें सीख जाता हूँ।"

मैं डारचेस्टर हाउस में बैठी-बैठी सलाह-मशविरे खत्म होने की राह देख रही थी। इस जगह आराम-चैन की तो कोई कमी थी ही नहीं। पर इस जगह ऐसा भव्य ठाट-बाट देखकर मेरे दिल को सख्त चोट पहुँची। कितनी शानो-शौकत! ऐश-आराम और विलास के इस विशाल धाम का काम बिना किसी शोर-गुल के निरन्तर चल रहा था। यह स्वयं और बिना किसी रुकावट के चलनेवाली सेवा-शुश्रूषा प्रेमपूर्वक होने की बजाय जब धन्धे के तौर पर की जाती है, तब कैसी नीरस और अजीब मालूम होती है! जीवन की पवित्रता और सादगी को भूले हुए लोग पूर्णिमा के चाँद की तरह स्वच्छ कपड़ों में आते-जाते थे; पर उनके मन में कभी आश्चर्य या आनन्द का अतिरेक होता हो, ऐसा नजर नहीं आया। नाच के कमरे से आधुनिकतम

स्वरों की सुरीली आवाज़ आ रही थी। उपाहार-घरों में जीभ के सभी स्वादों को तृप्त करने की सामग्रियाँ मौजूद थीं। जगह-जगह कीमती फूलों के ढेर लगे थे।

थोड़ी ही देर में मेरे मान्य अतिथि बाहर आये। मोटर के लिए हमें एक मिनट ठहरना पड़ा। हम लोग हाल में बैठे। गांधीजी को देखकर अन्य लोगों के परेशानी के भाव क्या गायब हो रहे थे? मुझे ऐसा कुछ जरूर महसूस हुआ। पर शायद यह मेरी कल्पना ही हो। खैर! गांधीजी और मैं अपने वास्तविक बो के जीवन में—सुख-दुःख, प्रार्थना और सेवा के वातावरण में—वापस आये।

परिषद् की समाप्ति

(१०)

गांधीजी जब इंग्लैण्ड पहुँचे तो उनके लिए पहले हफ्ते का यह प्रोग्राम बनाया गया कि वे कामन-सभा में मजदूर-दल के सदस्यों के सामने भाषण दें और उनके सवालों के उत्तर भी दें। चाय पीने के थोड़ी देर बाद १० वें नम्बर के समिति-गृह में सभा हुई। सभा खत्म होने के बहुत देर बाद तक उनके सदस्य गांधीजी के हस्ताक्षर लेने के लिए आते रहे। जार्ज लान्सबरी ने साग्रह गान्धीजी से फाउन्टन पेन की अदला-बदली की और प्रार्थना का समय होने तक उनसे बातचीत करते रहे। सवाल उठा कि 'क्या अब हम लोग सात बजे तक नाइट्सब्रिज पहुँच सकेंगे?'

किसी ने कहा,—"यहीं प्रार्थना क्यों न की जाय?"

यह ठीक लगा। दरवाजा बन्द किया गया, कुछ लोग कुर्सी पर बैठे और कुछ लोग जमीन पर, और हमारे भारतीय मित्रों ने प्रार्थना प्रारम्भ की। अद्भुत शान्ति थी, इसी लिए हमें कामन-सभा के मकान से टकराती हुई टेम्स नदी की आवाज़ सुनाई दे रही थी।

हर हफ्ते फ्रेण्डस् मीटिंग हाउस में भारतीय सवालों के लिए प्रार्थना होती थी; उसमें गोलमेज परिषद् के हरेक धर्म के सदस्य भाग लेते थे। ऐसा मालूम होता था कि अंग्रेज लोग भारतीय-विषयक अपने उत्तरदायित्व को गंभीरता से अनुभव करने लगे हैं। पार्लमेंट के सदस्य अब यह समझने लगे थे कि पैंतीस करोड़ भारतीयों के भाग्य-निर्णय की जिम्मेदारी उन्हीं पर अवलम्बित है। पार्लमेंट पर यह पुराना आक्षेप था कि ज्योंही भारतीय-समस्या पर बात शुरू हुई कि सभा की कुर्सियाँ खाली हो जाती थीं, पर अब ऐसा नहीं होता था। प्रकाशकों का यह कहना था कि लोग अब भारत-सम्बन्धी किताबों को बड़े चाव से खरीदते हैं। मिस मेयो की 'मदर-इण्डिया' के

अलावा अन्य अनेक किताबें पार्लमेण्ट के सदस्यों को भेंट दी जाती थीं। इसलिए हम सब लोगों के मन में आशा का उद्भव हो गया था।

इतने में पार्लमेंट का चुनाव आ गया। जब अपने देश ही के दिवालियेपन का डर हो, तब सात हज़ार मील दूर के किसी देश की स्थिति के बारे में विचार करने के लिए तो मनुष्य में अद्भुत कल्पना-शक्ति चाहिए। कुछ समय बाद लोगों को यह भी महसूस होने लगा कि भारतीय समस्या का ज्यों-ज्यों अभ्यास किया जाता है, त्यों-त्यों वह और भी पेचीदी होती जाती है। उदाहरण के लिए 'हरिजनों' का ही सवाल लीजिए। पहले तो यह स्पष्ट जाहिर था कि गांधीजी ही हरिजनों के हितकर्ता और हिमायती हैं। क्या गांधीजी ने दस वर्ष से यह काम नहीं शुरू किया था? एक हरिजन लड़की को अपने यहाँ पाल-पोसकर उन्होंने सनातनी ब्राह्मणों का आचार-धर्म नहीं तोड़ा था? और क्या बार-बार हम लोगों ने उनके अनुयायियों द्वारा हरिजनों के लिए खोली गई पाठशालाओं के विषय में नहीं सुना था? ये पाठशालाएँ ब्राह्मण चलाते थे और वे अपने शिष्यों के साथ खाते-पीते थे; इससे क्या वह शाप दूर नहीं होता? क्या भारत के अनेक अखबारों में ऐसी खबरें नहीं आती थीं कि गांधीजी के प्रवास में अमुक जगह सभा में हरिजनों को और लोगों से अलग बैठाने का प्रबन्ध किया गया था, परन्तु गांधीजी ने इसपर ध्यान नहीं दिया और सवर्णों की हरिजनों के प्रति की अवज्ञा को ध्यान न देकर स्वय उनके बीच बैठकर भाषण दिये? क्या उनके स्वयंसेवक हरिजनों को अपने साथ लेकर तीर्थयात्रा को नहीं जाते थे? और जहाँ उन्हें मन्दिर-प्रवेश के लिए रोका गया वहाँ वे मन्दिर के बाहर धरना लगाकर सप्ताहों तक इन्तजार करते रहे। और उन्होंने क्या यह प्रार्थना नहीं की थी कि 'हे नाथ, तू मन्दिरों के पाषाण-हृदय रक्षकों के हृदयों को पिघलाकर उनके हृदय में कोमलता का संचार कर?' क्या इन्हीं निरन्तर के प्रयत्नों द्वारा हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश नहीं मिला था?

परन्तु अब यहाँ एक हरिजन, डा० अम्बेडकर, गोलमेज परिषद् के एकमात्र हरिजन सदस्य, गांधीजी के इन उपर्युक्त कामों को झूठा साबित कर रहे थे। उनका कहना था कि गांधीजी हरिजनों की स्थिति और माँगें नहीं जानते; और

हरिजनों को अलग जातीय प्रतिनिधित्व चाहिए ही। दूसरी तरफ गांधीजी यह कह रहे थे कि यह भेंट हरिजनों के लिए घातक सिद्ध होगी।

अंग्रेज जनता किसे सही और सच्चा समझे ? जातीय प्रतिनिधित्व ? इन शब्दों में क्या अर्थ निहित है, यह तो स्पष्ट जाहिर नहीं था।

अजीब और अनसुने शब्दों को सुनकर अंग्रेज असमंजस में पड़ गये। हिन्दुस्तान कितना विशाल देश है, इसकी उन्हें खबर ही नहीं थी। विलायत और हिन्दुस्तान की स्थिति का वर्णन करने के लिए एक ही जैसे शब्दों का प्रयोग होता है और लगभग उनका अभिप्राय भी एक जैसा ही होता है ; हरएक अंग्रेज ऐसा समझता था। इसलिए वे थोड़े ही समय में ऐसा समझने लगे कि इस परिस्थिति का न तो सिर है, न पैर। और वे निराश हो गये।

सच्चा कौन ?—डा० अम्बेडकर या गांधीजी ? हरिजनों के दुःखों का अनुभव और किसे अधिक है ? बिलकुल गरीब लोग—इङ्गलैण्ड में हरिजनों से मिलते-जुलते लोग ; कहने लगे कि—'जब तक मध्यम वर्ग के लोग हमारे प्रतिनिधि होकर हम लोगों के लिए लड़ते थे, तब तक हमारे दुःख कायम ही रहे। यह सच है कि इन लोगों ने हमारे लिए अपना जीवन दे दिया, हमारे लिए भावपूर्ण भाषण दिये और लेख भी लिखे ; पर ये लोग हमेशा हम पर सवार रहते थे। इस सम्बन्ध में लोगों को गांधीजी का दर्शन नई तरह से ही होने लगा। वे डा० अम्बेडकर के कथन का विरोध करते थे और ब्रिटिश जनता से यह कहते थे कि हरिजनों के चुने हुए प्रतिनिधि डा० अम्बेडकर की अपेक्षा वे हरिजनों की माँगों को अधिक अच्छी तरह जानते हैं। ब्रिटिश राजनीति से जरा भी परिचय रखनेवाले को यह व्यवहार बहुत ही परिचित और भयानक मालूम होता था। लोगों के मन में यह विचार उठते थे कि राजनीति में जो ईर्ष्या-द्वेष, अहङ्कार और हल्कापन होता है, वह तो गांधीजी में नहीं आ गया है ? ऐसे अनेक तर्क-वितर्क लोगों में होने लगे। इसलिए भारतीय समस्या के निर्णय को स्थगित रखा गया।

इधर हिन्दू-मुस्लिम-समस्या भी उग्र रूप धारण कर रही थी। शौकतअली के भाई दिवंगत हो गये थे, अतः उनकी जगह उन्होंने स्वयं ली। पुराने समय में

गांधीजी और उनके अनुयायी इन्हें 'बड़े भाई' कहकर पुकारा करते थे। उस समय वे प्रेमी, सहिष्णु, विनोदी और मिलनसार थे। पर इस समय वे बदल गये थे, ऐसा हमें ही नहीं अपितु उनके पुराने-से-पुराने मित्रों को भी महसूस होता था। अब तो जब कभी पुराने नेताओं का नाम निकलता तब वे झगड़ ही पड़ते थे।

वे बार-बार कहते,—'मैं तो शान्ति चाहता हूँ; हमें अच्छी सुलह कर इस झगड़े को खत्म कर देना चाहिए।'

अंग्रेज़ अधिकारियों को ये शब्द बड़े ही आकर्षक लगते। वे समझते थे कि मुसल्मानों को कुछ अच्छी शर्तें देकर खुश किया जा सकता है और उन्हें ब्रिटिश सरकार से अलग सुलह करने की बात समझाई जा सकती है और इस प्रकार क्या साम्राज्यवादी रोम के उस पुराने सूत्र का वे नया समर्थन नहीं करेंगे? आठ महीने पहले, प्रथम गोलमेज परिषद् के समय, जब मौलाना मुहम्मदअली का स्वर्गवास हुआ उस समय ये ही शौकतअली गांधीजी के बारे में कहते थे; "मेरे गुरु! मेरे सरदार! यदि वे यहाँ आते तो कितना अच्छा होता! उन्हें तो इस समय लन्दन में होना चाहिए था!"

गांधीजी प्रथम गोलमेज परिषद में गैरहाजिर थे। उस समय शौकतअली साहब ने उपर्युक्त हृदयोद्गार प्रकट किये थे।

अब उनकी इच्छा पूरी हुई। गांधीजो अब हाजिर थे। परन्तु द्वेष तो अब और अधिक मात्रा में था।

शौकतअली अब बार-बार कहते,—'हम मुसल्मानों को तो अब सुलह-शान्ति चाहिए।'

परन्तु 'शान्ति' का अर्थ यहाँ सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से अधूरी और इनाम के तौर पर मिलनेवाली सुलह भी हो सकती है। और इस शब्द का वास्तविक अर्थ जो शाश्वत और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ही ऊँचा है तथा जिसे गांधीजी अकसर शौकतअली साहब के अनुयायियों को बताते रहते थे, अर्थ यदि इस समय लिया जाता तो शौकतअली साहब की नजरों में उस 'शान्ति' शब्द की खींचातानी ही होती!

गोलमेज परिषद् की लम्बी-लम्बी सभाओं में हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर अनेक भाषण हुए। परन्तु उच्च-से-उच्च अंग्रेज अधिकारियों द्वारा अच्छे-से-अच्छे दिये गये इन छोटे और उत्तम प्रवचनों का श्रोताओं पर ज़रा भी असर नहीं पड़ा। झगड़ों का निराकरण न तो कानूनी-कायदे कर सकते हैं और न उच्च अधिकारियों द्वारा दिये गये लच्छेदार भाषण ही। ये चीज़ें क्या हम लोग बचपन में ही सीखे थे? इन दोनों पक्षों के बीच जब कोई विदेशी सरकार पड़ती है या अत्यन्त तर्क-वितर्क से काम लेनेवाला प्रधान-मन्त्री पड़ता है, तब इन दोनों पक्षों का वैमनस्य और भी उग्र रूप धारण कर लेता है। झगड़ा खड़ा करनेवाले तो झगड़ालू प्रचारक ही होते हैं। इन प्रचारकों के हाथ में बनावटी धर्म-श्रद्धा है और उनके कथनानुसार बातें छापनेवाले अखबार भी हैं। इन दोनों साधनों के द्वारा ये लोग भोली-भाली जनता को बहकावे में डालकर उल्टे रास्ते पर ले जाते हैं। वे अपनी इन हरकतों से कभी बाज़ नहीं आनेवाले हैं। जिस समय विलायत में गोलमेज परिषद् में भारतीय हिन्दू-मुस्लिम-समस्या पर वाद-विवाद हो रहा था, उस समय भारत में लाखों ग्रामवासी और किसान परस्पर मिलकर शान्ति-सुलह से रह रहे थे; हिन्दू और मुसलमान बिना किसी भेद-भाव के एक-दूसरों के उत्सव-त्योहारों में भाग ले रहे थे और एक-दूसरे की मुसीबत में मदद कर रहे थे और खुशी में एक-दूसरे से गले मिलकर आनन्दोल्लास कर रहे थे। परन्तु दूसरी तरफ विलायत के अखबारों को तो कौमी-एकता के बारे में भाषण छापने का चस्का पड़ा हुआ था। गांधीजी और डा० अम्बेडकर के बीच जो तीव्र वाद-विवाद चला था, वह तो इन पत्रकारों के लिए मन-माना भोजन था और उसमें नमक-मिर्च मिलाकर परोसने से वे लोग कब चूकनेवाले थे? हरिजनों के बारे में वास्तव में क्या हो रहा था, यह तो हमारे अंग्रेज भाई बहुत ही कम—उँगली पर इने-गिने लोग—जानते थे। हरिजनों को अलग प्रतिनिधित्व मिले, यह ऊपर से देखने में तो एक आकर्षक तोहफ़ा लगता था, परन्तु वस्तुस्थिति को जाननेवाले तो यह स्पष्ट देख रहे थे कि यह उनके लिए एक शाप-रूप ही सिद्ध होगा। इनकी अलग प्रतिनिधि चुनने की मण्डली बन गई तो यह तो निश्चित ही है कि हरिजन, हरिजन (अस्पृश्य) को मत दे सकेगा। और इस प्रकार इस वोट देने की पद्धति से ही

उनकी अस्पृश्यता की बेड़ियाँ और भी मजबूत हो जायँगी, वे सदैव के अस्पृश्य हो जायँगे और हमेशा अन्य हिन्दू-ससाज से वे अलग ही रहेंगे। गांधीजी ने इन बेड़ियों को तथा इस कथित अलगाव को दूर करने की प्रतिज्ञा ली ही थी। इनके अनुयायी इस अस्पृश्यता के नाश के लिए तथा इस दाग को मिटाने के लिए और इस 'अस्पृश्य' शब्द को हमेशा के लिए खत्म करने के लिए कमर कसे हुए थे। 'हरिजन' मनुष्य की तरह एक नागरिक के नाते अपना वोट जिसे चाहें उसे दें, यही उचित है – ऐसा गांधीजी और उनके अनुयायी दोनों चाहते थे।

गांधीजी ने आक्सफोर्ड के विद्यार्थियों के सामने भाषण देते हुए यह कहा था:—

"मुसलमान और सिख सगठित हैं। हरिजनों का संगठन बहुत कमजोर है। उनमें राजनीतिक जागृति बहुत ही कम है। और उन पर इतना अत्याचार किया जाता है कि मैं उन्हें उनकी अपनी गलतियों से बचाना चाहता हूँ। अगर अपना वोट देने के लिए उनका एक अलग फिरका बन जाता है तो गाँवों में जहाँ रूढ़िग्रस्त हिन्दू लोग बसते हैं, वहाँ उनकी और भी बुरी हालत हो जायगी। युगों तक हरिजनों की उपेक्षा का प्रायश्चित्त तो सवर्ण हिन्दुओं को ही करना है। यह प्रायश्चित्त सक्रिय समाज-सुधार द्वारा हरिजनों की सेवा करते हुए उनके जीवन में सुव्यवस्था निर्मित करके पूरा किया जा सकता है। उनके लिए अलग मत-विभाजन करके तो वह हो ही नहीं सकता। मत-विभाजन द्वारा आप लोग हरिजनों और सवर्णों को लड़ा देंगे। आपको मालूम होना चाहिए कि मुसल्मानों और सिक्खों का अलग प्रतिनिधित्व स्वीकार करना भी मेरे लिए एक अनिवार्य अनिष्ट है। और हरिजनों के लिए तो वह विशुद्ध रूप से हानिकारक है······।

हरिजनों के मत-विभाजन से उनका दासत्व हमेशा के लिए क़ायम रहेगा। मुसल्मानों के मत-विभाजन से क्या वे मिट जायँगे? क्या आप लोग यही चाहते हैं कि 'अस्पृश्य' हमेशा ही अस्पृश्य रहें? अलग-अलग वोट देने के अधिकार तो इस चीज़ को हमेशा के लिए क़ायम रखेंगे। वास्तविक आवश्यकता तो अस्पृश्यता-निवारण की है, और इसके 'ऊँचे' लोगों ने 'नीच' लोगों पर जो प्रतिबन्ध लगा रखा है, वह दूर हो जायगा। यह प्रतिबन्ध हट जाने पर आप किसे अलग वोट देने का

अधिकार देंगे ? यूरोप का इतिहास देख जाइए । आप लोगों के यहाँ मजदूर या स्त्रियों को अलग से वोट देने का अधिकार है ? पुख्ता उम्र की हैसियत से वोट देने का अधिकार हरिजनों को भी देकर आप उन्हें संरक्षण देते हैं जिससे रूढ़ि-ग्रस्त सवर्ण-हिन्दुओं को भी उन्हीं के पास वोट माँगने के लिए जाना पड़ेगा ।

"आप यह जानना चाहते हैं कि तब डा० अम्बेडकर उनके अलग वोट देने का अधिकार क्यों चाहते हैं ? मैं डा० अम्बेडकर का बहुत ही आदर करता हूं । उन्हें हमें कटुवचन कहने का पूरा अधिकार है । वे इतना संयम रखते हैं कि जिससे हम लोगों का सिर नहीं फूटता । आज उनके अन्दर वहम ने इतनी जगह कर ली है कि उन्हें और कुछ नजर ही नहीं आता । उनका हरेक सवर्ण हिन्दू को हरिजनों का पक्का शत्रु मानना स्वाभाविक है । मुझे अपनी जवानी में ऐसा ही अनुभव हुआ था । वहाँ मैं जहाँ-जहाँ जाता, वहाँ गोरे मुझे तंग करते । डा० अम्बेडकर अपना रोष प्रकट करें, यह स्वाभाविक ही है । परन्तु वे जो अलग वोट देने का अधिकार माँग रहे हैं, उससे उन्हें सामाजिक सुधारों में सफलता नहीं मिलेगी । वे स्वयं बड़े भारी सत्ता या ओहदे का उपभोग करेंगे, परन्तु इससे हरिजनों का ज़रा भी कल्याण नहीं होगा । मैं यह सब कुछ साधिकार कह रहा हूँ, क्योंकि मैं वर्षों तक हरिजनों के साथ रहा हूँ और उनके सुख-दुःख में मैंने भाग लिया है ।"

× × ×

नवम्बर के आखिरी सप्ताह एक दिन मैंने देखा कि गांधीजी के आगे हिन्दुस्तान से आई डाक का एक ढेर पड़ा है, और उनके चेहरे पर विषाद की एक रेखा थी ।

"कोई बुरा समाचार है ?" मैंने पूछा ।

उन्होंने कहा,—"बहुत ही गंभीर समाचार है । यह जवाहरलालजी का पत्र है । और शायद उनका यह आखिरी पत्र होगा । ऐसा मालूम होता है, जल्द ही उनकी गिरफ्तारी होनेवाली है ।"

"उन्हें इस समय क्यों गिरफ्तार किया जा रहा है ?" मैंने पूछा ।

गांधीजी ने कहा,—"क्योंकि वे किसानों को यह कह रहे हैं कि तुम ज़मीन-कर देने के लिए खुद को न बेच बैठना । वे उन्हें कहते हैं, तुम लोग घर-बार

और अपने पशु बेचकर महसूल देने की अपेक्षा जेल जाओ तो अधिक अच्छा होगा। क्योंकि वे लोग महसूल चुकाने का भगीरथ प्रयत्न करें और फिर भी न चुका सकें तो भी सरकार उनसे कहेगी, 'देखो तुम लोगों के पास पैसे होते हुए भी तुम महीनों से नहीं चुका रहे हो, तुम तो बहुत कर्जदार हो गये हो। भारतीय कलेक्टरों के हाथ में इतनी अधिक सत्ता है कि दुनिया के किसी भी भाग के किसी भी अधिकारी वर्ग के पास न होगी। वे जो चाहें, कर सकते हैं। जब तक मेरी साँस चलती है तब तक क्या तुम समझती हो कि मैं इन किसानों के उत्साह को यूँही जाने दूँगा? तुम्हारी सरकार हमारे यहाँ पश्चिम के सुधारों की सुख-सहूलियत देना चाहती है। वह कहती है,—'यह रहे तुम्हारे लिए सिनेमा, यह तुम्हारे छुट्टी के दिन हैं और ये रहे लाइसन्सवाले घर।' परन्तु लोगों की माँग तो हमेशा एक ही है,—'हमें रोटी दो।' आर्डिनेन्सों का मतलब तुम अंग्रेज़ लोग नहीं समझ सकते। जब यह कहा जाता है, कि पुलिस को सत्ता सौंप दी गई है तब आप लोग इंग्लैण्ड के जैसी ही किसी पुलिस का ख्याल करते हैं। इंग्लैण्ड के पुलिस के अफसर तो सद्गृहस्थ हैं, पर भारत में पुलिस का अर्थ बिल्कुल अलग ही होता है। मैंने इंग्लैण्ड के उच्च पुलिस अधिकारियों से बातचीत की है। और बहुतों के साथ मेरी जान-पहचान भी है। वे बहुत ही सज्जन हैं, इसमें तो कोई शक ही नहीं। यह तो आपको मालूम ही है कि ये लोग जब कवायत करते हैं तो एक ही साथ इन्हें बोलना पड़ता है, 'हम जनता के सेवक हैं, हम जनता के सेवक हैं।' इससे ये शब्द इन लोगों के हृदयों में घर कर जाते हैं। ये लोग वास्तव में आप लोगों के सेवक हैं। उनका हरएक काम सेवा से परिपूर्ण है। परन्तु भारत में तो वहाँ की विदेशी सरकार ने बदमाश, बड़े-बड़े अपराधी और नीच वर्ग के लोगों में से पुलिस की भर्ती की है। इसलिए वे लोग जनता से जैसा व्यवहार करते हैं उसमें आश्चर्य जैसा कुछ भी नहीं है। आप इन लोगों को दोष नहीं दे सकते। इन लोगों के हाथ में यदि सत्ता दी जाय, तो इन की जिनसे व्यक्तिगत शत्रुता हो, उन्हें पकड़कर अपना बदला लेते हैं। उन्हें अपने रोष को शान्त करने के लिए अनेक मौके मिल जाते हैं, यह हम लोग जान नहीं सकते? इनका जनता के साथ कोई स्वाभाविक संबन्ध नहीं

होता। वे तो केवल मशीन-मात्र हैं। अधिकारियों के चेहरे पर के भावों को समझने की आदत भी इन लोगों में होती है। इन आर्डिनेन्सों की वजह से गाँवों को इन्हीं लोगों पर अवलबित होना पड़ता है। गाँव में से कोई भाग न जाय इसलिए वे गाँव को घेर लेते हैं, और इसके बाद घेरा क्रमशः छोटा करते जाते हैं, और केवल संदेह पर ही सारे गाँव को अपने शिकञ्जे में कस लेते हैं। और मुक़दमा चलाये बगैर ही लोगों को जेलखानों में ठूस देते हैं।"

कुछ दिनों बाद एक दिन गांधीजी ने मुझसे कहा,—'मेरी भारत-मंत्री के साथ ख़ूब देर तक बातचीत हुई।' अमुक परिस्थितियों के होने की संभावना थी, उसी विषय पर चर्चा हुई। उसी दौरान में सर सेम्युअल होर ने गांधीजी से कहा था --'कांग्रेस को कुचल देना होगा।'

मैं ध्यान से सुनती रही, क्योंकि मैं यह जानती थी कि सर सेम्युअल होर के प्रति गांधीजी के मन में बहुत उच्च अभिप्राय थे,—"ये एक सच्चे आदमी हैं। मेरी नज़रों में इनसे अधिक सच्चा और कोई आदमी नहीं है। 'डेली हेरल्ड' में जो उनका वह रेखा-चित्र आया था, हूबहू सम्पूर्ण था। मि० लास्की द्वारा कही गई एक-एक बात की पूर्ति के लिए मैं घटनाएँ दे सकता हूँ। आप हमेशा सर सेम्युअल होर के मन में क्या विचार उठते हैं यह जान सकते हैं। वे कुछ भी गुप्त नहीं रखते। मुझे उनके साथ काम करना अच्छा लगता है। क्योंकि वे अपने जीवन के सभी पृष्ठ खोल देते हैं।"

"परन्तु इसमें तो कोई शक ही नहीं कि कांग्रेस को कुचला नहीं जा सकता, क्यों ठीक है न?" मैंने पूछा। दमन नीति के कारण जनता की विरोध-भावना तथा प्रतीकार-संकल्प कितना उग्र हो जाता है, यह मैं विचार कर रही थी।

इतने में गांधीजी ने स्वस्थता से उत्तर दिया,—'बेशक नहीं। मैंने सर सेम्युअल होर से प्रार्थना की कि आप परिस्थिति पर पुनः विचार करें। आप अगर दमन करना शुरू करेंगे तो मेरे आपके दोनों देशों पर अपार कष्ट आ पड़ेंगे। मैंने उन्हें याद दिलाया कि पहले के वाइसरायों—लार्ड चेम्सफोर्ड और लार्ड हार्डिज ने कांग्रेस को मान्य किया था। इसके उत्तर में उन्होंने कहा,--'वह समय दूसरा था,

आज विद्रोह जाग उठा है और मैं विद्रोह को सहन नहीं कर सकता।' मैंने उन्हें समझाया—'पर आप विद्रोह किसे कहते हैं? संसार के इतिहास में इसके जैसा विद्रोह कभी हुआ भी है? विद्रोह जब सम्पूर्ण शान्ति-मय हो तब भयंकर नहीं होता, यह तो आप मानते हैं न? हमारे दिलों में आप लोगों के प्रति ज़रा भी शत्रुता नहीं है।' वे बोले,—'कांग्रेस ने जब तक विद्रोह किया हुआ है, तब तक उसे देखा नहीं जाता, और खासकर इसलिए कि वह मुकाबले में दूसरी सरकार खड़ी कर रही है।' मैंने कहा,—'बहुत-से काम जो सरकार को करने चाहिए, वे हम लोग कर रहे हैं, इसमें तो कोई शक ही नहीं है। पर इसका कारण एकमात्र यही है कि सरकार ने ये काम बिल्कुल नहीं किये हैं। हमने शराबियों को उनकी बुरी आदतों को छुड़ा कर उन्हें सच्चा नागरिक बनाया है। यह दोष हम अपने ऊपर खुशी से लेते हैं, पर उधर सरकार तो इसी शराब की दूकानों द्वारा शराब के व्यापार को प्रोत्साहन दे रही है। हम बेकारों को काम देते हैं और इसी लिए हमारे खादी-सेवकों ने अनेक लोगों के कर्ज़ को उतार फेंका है। यह भी सरकार का ही काम है। हमने अपनी अदालतें खड़ी की हैं, उसमें आना-न-आना जनता की इच्छा पर है, फिर भी बहुत-से लोग आते हैं।' सर सेम्युअल होर ने कहा,—'आप शायद मुझे बहुत ही कठोर व्यक्ति समझें और भविष्य में मुझे बुरा भी कहें। लोग मुझे जैसा कहना हो कहें, मैं यह सह लूँगा, पर किसी को यह कहने का मौका मैं नहीं देना चाहता कि उसने अमुक बात करने का वचन दिया था, पर की नहीं।' मैंने कहा—'सर सेम्युअल, इस बात में हम सहमत हो सकते हैं। इसके लिए मैं आपके साथ हाथ मिलाता हूँ। आपकी यह सत्यता ही हम दोनों के बीच एकता स्थापित करनेवाली वस्तु है। मैं आपका आभारी हूँ।'

नवम्बर में जनरल स्मट्स लन्दन होकर कहीं जा रहे थे। वे और गांधीजी पुराने दोस्त हैं। बीस बरस पहले दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों की लड़ाई में गांधीजी का उनके साथ संघर्ष हुआ था। जनरल स्मट्स से जब अधिक अधिकार न मिले, तब गांधीजी ने पाँच हजार मज़दूरों को अपने साथ लेकर ट्रांसवाल में प्रवेश करने के लिए बड़ी भारी कूच की थी। सत्यपालन के अपने व्रत के कारण गांधीजी ने अपनी इस योजना की सूचना जनरल स्मट्स को दी थी। जिस दिन कूच प्रारम्भ हुई उस

दिन गांधीजी ने फिर उन्हें फ़ोन किया, परन्तु वहाँ फ़ोन का चोंगा नीचे रख दिया गया था। एक दिन की कूच के बाद उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया, परन्तु कूच तो बनाये गये प्रोग्राम के अनुसार जारी रही। आखिर जनरल स्मट्स को अपनी नीति बदलनी पड़ी और सुलह की शर्तों को बनाने के लिए गांधीजी को क़ैद से रिहा किया गया। सन १९३२ की उस विषम परिस्थिति के काल में ब्रिटिश सरकार और गांधीजी के बीच समझौता हो सके यही सोचकर जनरल स्मट्स अपने प्रोग्राम के मुताबिक़ अधिक दिन तक ठहरे। जहाज़ में बैठते समय जनरल स्मट्स ने अखबारों को मुलाक़ात देते हुए ये वचन कहे थे :—

"इस देश के सामने इस समय भारत की आज की समस्या सबसे महत्त्वपूर्ण और भयंकर है। ग्रेट ब्रिटेन को भारत के संतोष के लिए पूरी पूरी कोशिश करनी चाहिए। इस दिशा में वह जितनी शीघ्रता कर सके उतना अच्छा है, क्योंकि आज उसे जो समझौते का मौक़ा मिला हुआ है, वह बहुत देर तक नहीं रहेगा। मुझे विश्वास है कि गांधीजी उचित समाधान के लिए बहुत ही आतुर हैं; और उनका प्रभाव जहाँ तक कायम है, वहाँ तक वे ब्रिटेन का समाधान करने में पूरी पूरी मदद करेंगे। गांधीजी भारत के अधिकतम भाग के प्रतिनिधि हैं, और उनके मुक़ाबले में अनुशासन का पालन कोई नहीं करा सकता। ग़लतफ़हमी को और भारत में अव्यवस्था से होनेवाले कष्टों को दूर करने के लिए इस समय कुछ भी उठा न रखना चाहिए। इसका इलाज पशुबल का प्रयोग नहीं है; और आधुनिक भावना तथा ब्रिटिश स्वभाव इन दोनों में से एक भी दमन-नीति की आजमाइश नहीं करेंगे। गोलमेज़ परिषद् की यह बैठक यदि इस काम को पूरा न कर सके तो इसे परस्पर की ऐसी सद्भावना और समझ से स्थगित करना चाहिए कि जिससे शीघ्र ही पुनः कामकाज शुरू किया जा सके और शीघ्र इस कार्य की समाप्ति की जा सके। भारत को जल्द ही स्वराज्य देने में न तो सम्प्रदाय बाधक हैं और न मत-विभाजन। परन्तु इस समय सबसे मुख्य बात यह है कि दोनों पक्षों में परस्पर विश्वास और समझ की भावना पैदा हो; और ऐसा कोई भी काम न हो, जिससे भारतीय और ब्रिटिश नेताओं के बीच संदेह की भावना पैदा हो जाये। मेरा पूरा विश्वास है कि दोनों पक्ष सच्चे

दिल से समाधान चाहते हैं और इस कठिन समस्या के हल के लिए यह वस्तु बहुत ही उपयोगी है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि ब्रिटिश जनता भारत को संतुष्ट करेगी और उसे ब्रिटिश-कॉमनवेल्थ का एक संतुष्ट सदस्य बनाने में शीघ्रता करेगी ।"

रायटर के तार के अनुसार उपर्युक्त मुलाक़ात के ये शब्द थे, पर इनका कभी उचित रूप से प्रचार न हो सका । अखबारों में अच्छी चीज को किस तरह बिगाड़ा जाता है, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है । इस तार को अखबारों ने छापने लायक नहीं समझा । परन्तु एक सप्ताह बाद एक तार और रोम से आया; जिसमें भारत और ब्रिटेन के सम्बंध को इरादतन बिगाड़ने के लिए खूब झूठी बातें लिखी गई थीं; इस तार का इंग्लैण्ड के अखबारों ने खूब प्रचार किया, और हरएक आदमी उसी तार का उदाहरण देने लगा ।

थोड़े दिनों बाद समाधान की आशा की एक किरण फिर नज़र आई, और सर सेम्युअल होर तथा प्रधान-मंत्री के साथ मुलाक़ातें भी हुईं । चिन्ताएँ दूर होती नज़र आईं, और उसकी जगह आशा का संचार हुआ ।

इसके बाद परिषद् की आखिरी बैठक हुई । यह पूरे आडम्बर के साथ हुई । रेडियो आदि सभी चीजों की व्यवस्था थी । लेडी रीडिंग, मिसेस पैथिक लॉरेन्स आदि दर्शकों के लिए एक अलग परदा लगाकर व्यवस्था की गई थी ।

आशावादी लोग आतुर होकर मि० मॅकडोनल्ड के भाषण की प्रतीक्षा कर रहे थे । पर इतना तो स्पष्ट नज़र आ रहा था कि उसमें जो समाधान की वृत्ति का अंश था, वह उदारता के किसी भी कार्य की अपेक्षा केवल उनके स्वर में और मित्रता के सुन्दर शब्दों में ही था; जो सहूलियतें दी गई थीं वे स्पष्ट नहीं थीं । मुझे तो उस समय ऐसा लगा कि एक ऐसी दावत में हमें बुलाया गया है जहाँ फूलों का अतिशय शृंगार तो अवश्य है, पर भोजन का नाम-निशान नहीं है । जिन-जिन वाक्यों का यहाँ उच्चारण किया गया वे एक कुशल वक्ता द्वारा अद्भुत ढंग से बोले तो ज़रूर गये थे, पर उनमें सार कुछ नहीं था ।

गांधीजी को इनका उत्तर देना था । यों उनका काम मुश्किल नज़र आ रहा था । जिस आभार-भावना का अस्तित्व ही न हो उसे कैसे प्रकट किया जा सकता है ?

परन्तु गुप्त रूप में जो सहूलियतें दी गई थीं, उनके लिए आभार न मानना भी तो तहज़ीब के ख़िलाफ़ था। इसलिए उन्होंने परिषद् के सभी सदस्यों की ओर से प्रधान-मंत्री के अथक परिश्रम, कुशल सभापतित्व, उनकी समय-सूचकता, नियमितता और ख़ूबी से काम निकालने की कला की तारीफ़ की और उसके लिए धन्यवाद दिया।

प्रधान-मंत्री ने जवाब में कहा,—"प्रिय महात्माजी, मैं चाहता हूँ कि हम लोग इस सहयोग के रास्ते को जारी रखें। यही शायद एक मात्र रास्ता हो। हमारे सभी व्यवहारों के मूल में जो भव्य और आध्यात्मिक वृत्तियाँ पड़ी हुई हैं उन्हें हमें अपने राजनीतिक विचारों से नहीं मिला देना चाहिए? एक बात के लिए मेरा गांधीजी से झगड़ा है। वे मेरी बराबरी में अपने को बूढ़ा क्यों मानते हैं? आज सुबह एक बजे बुलन्द आवाज में हमारे सामने बोलनेवाला व्यक्ति जवान ही हो सकता है। जवानी में गांधीजी मुझसे एक क़दम आगे हैं। हम दोनों में उम्र में कौन छोटा नज़र आता है यह तो मैं नहीं कह सकता, पर मैं समझता हूँ कि उनकी अपेक्षा मैं अन्तकाल के अधिक नज़दीक हूँ। जिस मनुष्य ने कुरसी पर बैठकर आप सब लोगों से काम लिया वह बूढ़ा आदमी था। यहाँ मेरे साथ बैठे इस जवान ने आज मुझे सुबह छः बजे उठने के लिए मजबूर किया! भविष्य में होनेवाली परिषदों में शायद मि० गांधी सभापति का आसन ग्रहण करेंगे, और अगर ऐसा हुआ तो मुझे वहाँ उपस्थित होकर यह देखने की इच्छा होगी कि वे समय-पालन में अभ्यस्त हुए हैं या नहीं। आप सब लोगों की यात्रा सफल हो ऐसी मेरी इच्छा है। आप लोग इतना तो ज़रूर याद रखिएगा कि हम लोग एक ही कार्य में एक ही निष्ठा से जुटे हुए हैं।"

परिषद् के खत्म होते ही, हाथ मिलाना, बिदा का आदान-प्रदान और मित्राचार के वचन आदि बहुत देर तक होता रहा। हम लोग तुरन्त ही एक मोटर में बैठकर एक सदस्य के निजी घर पर गये। वहाँ दीवानखाने में भारतीय उदारदली तथा कांग्रेसवादी नेताओं की भीड़ लगी हुई थी। ये लोग मि० मेकडोनल्ड की घोषणा के अध्ययन के लिए एकत्र हुए थे। यूरोपियनों की शारीरिक सहूलियतों को गांधीजी सर्वोपरि महत्ता देते हैं। यह उनकी आदत-सी हो गई है। इसका एक खेद-

जनक प्रसंग मेरे सामने भी आया। इस कमरे में इकट्ठे हुए अनेक उत्कंठित व्यक्तियों को देखने का आनन्द मुझे मिल रहा था। मैं इस समय एक ऐसी सभा में हाज़िर थी जहाँ मुझे तरह तरह के अभिप्राय सुनने को मिलते थे और इससे मुझे बहुत ही ख़ुशी हो रही थी। दुपहर का एक बज चुका था। गांधीजी यूरोपियनों के खाने के समय का खूब ध्यान रखते हैं। अत्यन्त महत्त्व के प्रश्नों की चर्चा चल रही थी, इतने में एक टेबल लाया गया और उस पर मेरे अनेक बार मना करने पर भी मेरे लिए भोजन परोसा गया। मैंने विवेक की खातिर थोड़ा खाया और तुरन्त सुनने बैठ गई। परन्तु गांधीजी ने अत्यन्त महत्त्व के प्रश्नों पर से अपना ध्यान हटा-कर मेरी तरफ देखा और कहा,—"क्यों? तुमने प्रति दिन की अपेक्षा आज जल्द भोजन क्यों समाप्त किया?" यह चीज़ मेरे लिए असह्य-सी हो रही थी, पर फिर भी उनके आग्रह के कारण मैं भोजन का आनन्द लेती रही।

पेरिस में

(११)

सुबह साढ़े पाँच बजे। गांधीजी अपने ऊपर के कमरे से नीचे उतरकर घोर अन्धकारवाले प्रार्थना-गृह में प्रवेश करते हैं; इस कमरे को पार कर वे उसके अगले दरवाज़े पर पहुँचते हैं। बीच में प्रार्थना के लिए कुरसियाँ रखी हैं, उन्हें छुए बगैर गांधीजी बहुत ही कुशलता से आगे बढ़ते जाते हैं। पुलिस, गुप्त पुलिस और मुलाक़ातियों का समूह खड़ा है; उनका अभिनन्दन करते हुए आखिरी बार बो मुहल्ले की गलियों में घूमने जाते हैं।

सुबह साढ़े छह बजे वे स्नान और नाश्ते के लिए वापस आ जाते हैं।

सुबह सवा आठ। बिदा की रस्म शुरू होती है।' पुलिस की बारह सप्ताह की चौकीदारी खत्म हुई। गांधीजी इनके साथ तथा घण्टों से राह देखते हुए पड़ोसियों के साथ हाथ मिलाते हैं। और डा० कतियाल की गाड़ी आज आखिरी बार गली के किनारे पर मुड़ती है। उसके आगे पुलिस की ज़बरदस्त मोटर है, इसी कारण बड़ी भीड़ होते हुए भी हमें रास्ता मिल जाता है। हम पूर्वी लन्दन के रहनेवालों के लिए तो ऐसी व्यवस्था बाइबल की चमत्कार-घटना के समान थी जिसमें लालसमुद्र के पानी ने अलग होकर मार्ग बना दिया था। हम लोग अब तीसरी और आखिर की बड़ी-से-बड़ी और उत्तम गाड़ी में बैठे हैं। यह गाड़ी सर प्रभाशंकर पट्टणी की है।

अचानक ही हम लोग माइल्लैण्ड रोड पर भीड़ में घिर जाते हैं। रास्ते पर खड़े हुए एक पुलिस ने हमें रोका है! क्या मोटर पर जो गोलमेज़ परिषद् का बोर्ड लगा है, वह उसने नहीं पहचाना है? ऐसा तो नहीं हो सकता! यह हम लोगों का कितना अपमान है! एक दूसरे की बनावटी चिढ़ देखकर हम लोग हँस रहे थे। अब हम लोग पुनः साधारण व्यक्ति हो जायेंगे। अब न तो हमें किसी तरह

का खास अधिकार होगा और न ही सरकार हमारी तरफ खास ध्यान देगी, यह कैसी विचित्र बात है ?

विक्टोरिया स्टेशन आने ही वाला था कि हम लोग सर प्रभाशंकर पट्टणी के पास से गुज़रे। वे पैदल ही गांधीजी को बिदा देने के लिए आ रहे थे। हम लोगों ने हाथ हिलाये। उनका ध्यान इस तरफ नहीं था। वे तो भारतीय तरीक़े से ज़मीन की तरफ आँख करके चलते आ रहे थे।

सुबह ९ बजे। प्लेटफार्म के लिए टिकिट के पैसे नहीं खर्चने पड़ते हैं, यह कितना अच्छा मालूम होता है। हमारी मण्डली के पास ब्रिंडिसी पहुँचाने के लिए कुल बासठ नग थे। परन्तु हम लोगों को ज़रा भी चिन्ता नहीं थी। मनुष्य अपने सामान की चिन्ता से मुक्त हो जाय तो उसे कितनी ख़ुशी है। गुप्त पुलिस के अधिकारियों ने टिकिट, पास-पोर्ट, और सामान आदि की सभी ज़िम्मेदारियाँ अपने ऊपर ले ली थीं।

परन्तु फिर भी गांधीजी ने चिन्तातुर होकर एक सवाल पूछा,—'खिलौने ठीक ठीक आ गये हैं कि नहीं।' खिलौने सुरक्षित हैं, यह सुनकर कहते हैं,—'मैं जो सामान साथ लाया था, उसके सिवा सिर्फ़ इन खिलौनों को ही मैं अपने साथ भारत ले जा रहा हूँ।' बो मुहल्ले के बालमन्दिर के बालकों ने गांधीजी की वर्षगाँठ पर उन्हें छोटे-छोटे ऊनी जानवर, रंगीन मोमबत्तियाँ और चाक से बनाये हुए कुछ चित्र उन्हें भेंट किये थे। इन्हीं खिलौनों की वह बात कर रहे थे।

गाड़ी चलती है—वहाँ जो अंग्रेज़ हैं वे Auld Lang Syne का गीत गाते हैं।

महादेव,—'यह भजन मुझे बहुत ही अच्छा लगता है। इसे सुनने के लिए मुझे दुनिया के किसी भी कोने में जाना पड़े तो ज़रूर जाऊँगा।'

सुबह साढ़े दस। फोकस्टन में हम लोग जहाज़ की सीढ़ियों पर चढ़ते हैं, यहाँ ब्रिटिश सिनेमावाले सामने मौजूद रहते हैं।

सुबह साढ़े ग्यारह। जिस फ्रेंच अधिकारी को गांधीजी की रक्षा का भार दिया गया था, उसकी सार्जंट एवन्स गांधीजी से पहचान कराता है। वह झुक करके

प्रणाम करता है और पूछता है,—'आप जहाज़ से पहले उतरना पसन्द करेंगे या पीछे?'

गांधीजी,—'आपको जैसा अनुकूल हो वैसा।'

दुपहर साढ़े बारह बजे। फ्रांस में प्रवेश करने का यह बहुत ही अच्छा तरीक़ा है, न तो किसी तरह का जकात है, न किसी तरह की तलाशी, न किसी तरह का पासपोर्ट या टिकिट बताने की आवश्यकता है। हम पैदल ही प्लेटफार्म पर आये, और हम लोगों ने सोचा आखिर यह चलने की मुसीबत कब तक? स्टेशन—मास्टर हमें रेलगाड़ी के एक आलीशान डिब्बे में ले जाते हैं। इसमें आधुनिक ढंग की बड़ी से बड़ी खिड़कियाँ हैं।

गांधीजी,—'परन्तु हम लोगों के पास तो पहले दर्जे की टिकिट नहीं है।'

रेलवे-अधिकारी नमस्कार कर कहता है, ये सभी सूचनाएँ आज ग़ैर-ज़रूरी हैं। हमें अच्छी तरह बिठाकर वह चला जाता है।

दुपहर का एक। पत्रकारों का जमघट आगे बढ़ आता है, पर गांधीजी सिर्फ इतना ही कहते हैं,—'मुझे ख़ुशी है कि मुझे फ्रेंच भूमि पर एक रात गुज़ारने का अवसर मिला, और मैं इसका यथाशक्ति पूरा सदुपयोग करूँगा।'

पत्रकार गांधीजी के अन्य साथियों से पूछताछ करते हैं।

"गांधीजी लन्दन में कहाँ ठहरे थे?"

किंग्सली हाल का परिचय देने जितनी हम लोगों को फ्रेंच भाषा नहीं आती थी, इसलिए हमें बहुत ही संकोच हुआ।

"वाय० एम० सी० ए०?" एक अखबार—नवीस ने पूछा।

"क्लूब" दूसरे ने उत्साह से हामी भरी।

"फोयर?" आखिर में यह निर्णय होता है कि यह आखिर का वर्णन ही ठीक है।

(नोट—फ्रेंच भाषा में 'फोयर' किसे कहते हैं, यह मालूम करना चाहिए।)

दुपहर के दो बजे। भारतीय ढंग के भोजन परोसने का काम मैंने और देवदास ने अभी अभी पूरा किया है। दो दिन की मुसाफ़िरी के लिए जितना भोजन चाहिए था उतना—रोटी, साग, नीबू का अचार, फल और पीसे हुए बदाम आदि—हम

लोगों ने अपने साथ शुरू से ही ले लिया था। देवदास ने कहा,--"इंग्लैण्ड तो हमने कुछ देख डाला; अब यहाँ फ्रांस में रहकर भी कुछ इस देश का परिचय पाया जाय तो कितना अच्छा हो! आपका फ्रेंच लोगों के प्रति क्या दृष्टिकोण है? ज़रा बतायेंगी?"

मैंने कहा,—'इन दो देशों के स्वभाव में दो ध्रुवों का-सा अन्तर है।'

"आप एक-दूसरे के इतने नजदीक होते हुए इतने दूर हैं; यह आश्चर्य-जनक है!!"

मैंने कहा,—'हमें ईश्वर ने इतना समीप रखा है, इसीलिए शायद हम लोगों के बीच का अन्तर आप लोगों को इतना अधिक नज़र आता होगा। हम दोनों दो आर्य-परिवार की अलग अलग दो शाखाओं के हैं। ये लोग जितने अंश में हम लोगों के पितृ-पक्ष के हैं, उतने तो शायद आप लोग भी नहीं हैं?'

देवदास,—'परन्तु यह इतना फ़र्क हुआ कैसे?' देवदास को भी अपने पिता की तरह, बात पूरी-पूरी समझ में न आये तब तक उसे छोड़ने की आदत नहीं है। जब किसी मनुष्य ने बहुत ही सादगी से कोई बात कह दी हो या कोई सिद्धान्त ही कह दिया हो, जो स्थायी भी हो सकता है और अस्थायी भी, तो उस समय सामने-वाले ऐसे मनुष्य की आदत कहनेवाले को कभी-कभी असमंजस में डाल देती है।

इसलिए मैंने जो वाक्य सहज स्वभाव से कह डाला था, उसके लिए मुझे कारण खोजने पड़े। इन दो देशों का सैकड़ों वर्ष पुराना विरोध, इंग्लैण्ड की खाड़ी के पार करते ही लोगों की स्वभाव-सम्बन्धी भिन्नता, फ्रेंच बन्दरगाह बुलों पर मचनेवाला शोर-शराबा, इसी शोर से बात का बतंगड़ बन जाता है; धक्का-मुक्की, हाथ-पैर का पट-कना, गले फाड़-फाड़कर क़सम खाने की आदत और ब्रिटिश,-जहाज़ की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मजदूरों के शोर-शराबे का वर्णन कर मैंने कुछ भेद उन्हें बताये। एक तरफ यह है और दूसरी ओर अंग्रेज खलासी और रेल्वे मजदूरों का शान्ति और स्वस्थता से आना-जाना, ये भेद हैं जो ध्यान देने योग्य हैं। इसके बाद उत्साहित होकर मैंने कहा,—'इनका स्वदेश-प्रेम देखिए। वे अपने स्वदेश-प्रेम के बारे में, गंभीर, उन्नतिशील और उसे पवित्र चीज मानते हैं। वे अपने सरकारी अधिकारियों

और मजिस्ट्रेटों का ख़ूब आदर करते हैं, और सच्चे दिल से राज्य के नियमों का पूरा-पूरा पालन करते हैं।'

देवदास,—'इसमें कोई शक नहीं। ऐसे राज-नियमों की बाबत में तो—।' हमारे लन्दन के मेयर का जलसा, अंग्रेजों की भोजन-पार्टी, बर्मिघम महल का दरबार आदि उनको याद आ रहा था।

उनकी अधूरी बात को लेकर मैंने कहा,--'हाँ, ज़रूर। हम लोग ये सब दृश्य खड़े होकर देखते ज़रूर हैं; पर रणभेरी और लाल पोशाक के सामने हम लोग अपना भाव नहीं भूलते और इस बात का हमेशा ख्याल रखते हैं कि हम अपने आपे से बाहर न हो जायँ।

दोपहर साढ़े तीन बजे। पेरिस का स्टेशन आ गया। ऐसा महसूस होता है मानों हम रूसी-विप्लव, या बेस्टिल के पतन की फ़िल्मों के भयंकर दृश्यों में खड़े हों। एंजिन, गाड़ी के बड़े-बड़े डिब्बे, लोहे और काँच के बड़े-बड़े ऊँचे ढेर, आग्रहपूर्वक चेतावनी देते हुए खींचनेवाले मनुष्यों की आवाज़, राक्षसी यंत्रों पर चढ़नेवाले, यन्त्रों जैसे ही मालूम होनेवाले आदमियों का दृश्य देखकर ऐसा मालूम होता है, मानों ये किसी बड़ी भारी फिल्म की आधुनिक ढंग की रचनाएँ हों। और इस जगह का बनावटी प्रकाश तो इन दृश्यों को और भी भयंकर बना रहा था।

बुलों बन्दरगाह पर हमारे उतरते ही लोगों का समूह तो जमा हो गया था; लेकिन मालूम होता था कि फ्रेंच जनता के असली नमूनेदार दाढ़ी और ऊँचे टोपवाले स्टेशन-मास्टर ने पुलिस को इस जन-समूह पर नियंत्रण रखने का अधिकार दे दिया था। इसलिए लोगों को शोभा और शान्ति से जहाज़ से रेलगाड़ी तक पहुँचा दिया गया था।

परन्तु पेरिस में तो जन-समूह ने गांधीजी का स्वागत करने के लिए उन्हें घेर ही लिया। प्लेटफार्म पर मानव-समूह जमा हो गया। लोग एंजिनों और गाड़ी के डिब्बों की छतों पर चढ़ गये। सीढ़ी और स्टेशन की छत भी न बची। रेलवे के लोग तो हँसते ही रहते हैं--सामान्यतः हम लोग जब किसी को इनाम देते हैं और उसके मुक़ाबले में जब वे लोग एक तिरस्कार भरी नज़र फेंकते हैं, उन लोगों से ये

लोग बिल्कुल भिन्न नज़र आते हैं। भूरी पोशाकवाले मज़दूरों को मामूली बाँसों द्वारा बनाई हुई सीढ़ी पर जगह-जगह खड़ा किया गया था, वे लोग अपने सिर पर सीमेन्ट आदि का मसाला लिये हुए थे। फोटोग्राफर सभी दिशाओं में फोटो लेने के लिए प्रकाश फेंक रहे थे, और इस तीक्ष्ण प्रकाश के कारण स्टेशन की विशालता और नीरसता में वृद्धि हो रही थी। मालूम हो रहा था कि यह प्रसंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मैं तो घिसटती जाती हूँ और शोर मचाते हुए पेरिस-वासियों के बीच कुचलती-सी जा रही हूँ। मैं सार्जण्ट एवन्स के पीछे-पीछे चलने का प्रयत्न कर रही हूँ, उनकी चौड़ी पीठ के कारण रास्ता मिलता जाता है। पुलिस तो इस छोटे-मोटे युद्ध से बिल्कुल अलग ही है। इनके गौरव और अनुशासन का आधार तो उनके मुखिया पर निर्धारित करता होगा। वह मुखिया जब इन्हें नज़र आये तभी तो इनकी धाक जमे न! परन्तु यहाँ तो सब ओर नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड हैं।

इस मानव-समुद्र के अन्दर गांधीजी चलते जाते हैं। वे सदा की तरह शान्त और प्रसन्न हैं, पर वे अपने साथियों से बिल्कुल अलग हो गये हैं। अखबार-नवीस और उत्साही लोग उनके और पुलिस के बीच व्यवधान बनाये हुए हैं। केमरे और सिनेमा की गाड़ियों के लिए लगाये गये रस्से ज्यों के त्यों प्लेटफार्म पर पड़े हैं। हमें इतने ज्यादा विघ्नों को पार करके रास्ता ढूँढ़ना पड़ता था कि सार्जण्ट एवन्स ने इनसे तंग आकर अन्तर्राष्ट्रीय विवेक को भंग करने का बीड़ा उठा लिया। और अपने मोहक स्मित-हास्य की वजह से, रास्ता तय कर, गांधीजी के पास जाकर हमेशा की अपनी जगह पर कायम हो गये।

दुपहर के चार बजे। हमारे गुज़रते ही स्टेशन के लोहे के दरवाजे एक बड़े भारी आवाज़ के साथ बन्द हो जाते हैं और जनता की भीड़ वहीं रुक जाती है। हमें थोड़ी देर का विश्राम बहुत ही अच्छा लगता है, और हम लोगों ने आराम की साँस ली। इतने में तो सामने से एक और जन-समूह हमारे स्वागत के लिए हम पर टूट पड़ता है। कुछ मेहरबान लोग जो हमें एक आलीशान होटल में ले जाना चाहते थे, वे इन्हें रोकते हैं। इसी होटल में पेरिस के भारतीयों ने एक स्वागत-समारंभ की आयोजना की थी।

साढ़े चार बज गये। होटल का विशाल हाल छोटी-छोटी मेजों से भर गया था। बड़ी-बड़ी चाँदी की चायदानियों से अपूर्व शान से कपों में चाय डाली जा रही थी। एक ऊची मेज के आगे गांधीजी के साथ दस-बारह आदमी बैठे हैं और वे गांधीजी के सत्कार-सम्बन्धी लम्बे-लम्बे भाषण दे रहे हैं। इनमें एक मशहूर हिन्दू डाक्टर हैं। वे तो कविता और गीत भी गा रहे हैं। सत्कार के भाषणों के बाद, जिसकी आँखों की रोशनी कम हो गई है ऐसी एक अत्यन्त वृद्ध, ऊँची महिला की टटार और भव्य मूर्त्ति खड़ी होती है, और मानों आशीर्वादस्वरूप वन्दे मातरम् का राष्ट्रीय-गीत गाती है।

इसके बाद परिचय की लम्बी रस्म अदा होती है। और गांधीजी अपना भाषण शुरू करते हैं। उनके शुरू के शब्द सुनते ही सारे हॉल में सन्तोष और शान्ति की लहर फैल जाती है।

"क्या खूब! कितने दिनों बाद हिन्दी सुनने को मिली।" मेरे नज़दीक बैठा एक ब्राह्मण बिल्कुल धीरे से बोला।

शाम के छह बज गये। गांधीजी रात को मादम गीज के यहाँ रहनेवाले थे। घर पुराने ढंग का, सुन्दर बँगले का एक छोटा-सा ब्लॉक है। ऐसा डर लगता है, आनेवाले लोगों की भीड़ से इनकी दीवारें और ताले टूट जायँगे। बँगले की जो मुख्य सीढ़ी है, उस पर तो इतनी भीड़ थी कि तिल रखने की जगह भी नहीं थी। बरामदे से बाहर का शोर-शराबा सुनाई दे रहा था। लोग अन्दर आने के लिए अनुनय-विनय कर रहे थे। और दरवाजे का कुन्दा बार-बार खड़खड़ाते थे। आखिर में द्वारपाल एक व्यक्ति का नाम पहचानता है और धीरे से दरवाजा खोलता है। एक क्रोध से काँपता हुआ लथर-पथर आदमी तीर की तरह अन्दर आता है; मानों कोई थका और निराश अपराधी आश्रय पा गया हो। मैं देखती रही। इस नवागन्तुक को अब यह महसूस होने लगा कि वह भी एक भाग्यशाली मनुष्य है; इसलिए अब वह बाहर की भीड़ के प्रति अपना तिरस्कार और ग़ुस्सा दिखा रहा था, और जितनी बार दरवाजा ठोकने की आवाज़ आती थी उतनी बार वह कह उठता था,—'खोलना नहीं, किसी को अन्दर न आने देना।' बाहर की गड़बड़

को देखकर फोन करके पुलिस को बुलाया जाता है, परन्तु इसके आने पर भी परिस्थिति में ज़रा भी फ़र्क नहीं आता। आख़िर में सार्जंट एवन्स पूछते हैं,—"मैं जाकर देखूँ, यदि कुछ हो सके तो ?"

द्वारवाल आभार मानकर स्वीकृति देता है।

सार्जंट एवन्स फ्रेंच भाषा नहीं जानते। पर उनका शरीर विशाल है और वे नाराज़ होकर अपने को खोते नहीं हैं। उनकी लाल मुख-मुद्रा पर हमेशा प्रसन्नता की हँसी विराजमान रहती थी। वे मनुष्यों की भीड़ को जिसमें जनता और पुलिस दोनों थी, सीढ़ी से नीचे आराम से उतार देते हैं। लम्बी गड़बड़ी के बाद एका-एक शान्ति का साम्राज्य हो जाता है और हम लोगों को विश्रान्ति मिलती है।

इसी बीच दीवानखाने में पेरिस के बुद्धिजीवियों की एक मण्डली जमा हो जाती है। इनकी संख्या इतनी ज़्यादा है कि इनमें से आधों को तो जमीन पर बैठना पड़ा। कमरे की हवा दूषित हो जाती है और घबराहट पैदा होती है। आने वाले लोग लम्बे-लम्बे भाषण दे रहे थे। ठीक हवा न मिलने से गांधीजी को खाँसी आने लगी, परन्तु भाषणों की झड़ी तो लगी ही रही। आख़िर में मुकर्रर किया हुआ एक घण्टे का समय खत्म होता है और लोगों को गांधीजी का भाषण सुनने और प्रश्नोत्तर करने का अवसर मिलता है। हम लोगों में से आठ को, रात की आठ बजे की आम सभा से पहले बगलवाले कमरे में जाकर भोजन कर लेना था। जाना तो हमें सिर्फ छह कदम ही था, परन्तु कमरे की भारी भीड़ के कारण इतना चलने में भी बहुत समय लग जाता है।

मेहमान बिखरने ही वाले होते हैं कि इतने में एक आदमी घर के एक खास कमरे के दरवाजे की ओर बढ़ता है। मैं उसे रोकती हूँ। अपनी इच्छा पूरी न होने से वह लाल-पीला हो जाता है और मुझे कहता है कि मैं अमुक अखबार का प्रतिनिधि हूँ। मुझ पर इसका जरा भी असर नहीं होता। मेरे मन में तो यही विचार घर किये हुए था कि यह झूठे नाम से प्रवेश कर रहा है। मैं उसके और दरवाजे के बीच रास्ता रोककर खड़ी हो जाती हूँ।

मन में तिरस्कार की भावना जागृत हुई और मेरा अंग्रेजी ख़ून खौल

उठा। मैंने कहना शुरू किया,—'आपको गांधीजी का ज़रा भी ख्याल नहीं है। उन्होंने दो सभाओं में हाजिरी दी और दो में और देनेवाले हैं। ग्यारह से लेकर चार बजे तक के समय में ये काम कुछ कम हैं क्या? आम-सभा पूरी होने के बाद आना। उस समय एक घंटा सिर्फ अखबारनवीसों के लिए है।'

वह बोला,—"दो मिनिट, सिर्फ दो मिनिट।"

मैं नाराज़ हुई,—'देखते नहीं; यहाँ, हर एक को दो ही मिनिट चाहिए? जरा अक्ल से तो काम लीजिए।'

वह बोला,—'मैं इस परिवार का परिचित हूँ।' यह दूसरा झूठ था।

"मैं बारह अखबारों का प्रतिनिधि हूँ।" उसने बात जारी रखी। और यूरोप तथा विलायत के अनेक दैनिक अखबारों के नाम गिना गया।

'तो आप उन्हें रात को मिल सकेंगे।'

'परन्तु मुझे तो उनसे खास काम है। मैंने चार सवाल तैयार किये हैं, उनके जवाब मैं उनसे चाहता हूँ।'

मैं ज़रा नरम हुई,—"गांधीजी को सवाल अच्छे लगते हैं। ये चारों सवाल आप मुझे दें। मैं इन सवालों का जवाब रात-रात में उनसे लिखवा लूँगी।"

"ओ हो! लेकिन सवाल तो मैंने अभी तक लिखे नहीं हैं। मुझे ज़रा यहाँ बैठकर लिख लेने दो?"

परन्तु अब मैंने अहिंसा छोड़ दी। वास्तव में देखा जाय तो व्यवहार और विचार दोनों में मनुष्य को अहिंसा का पालन करना चाहिए। पर मैं तो सत्य को एक मज़बूत खूँटी समझकर उससे चिपटी रही। मैं तंग आ गई। मुझे घृणा-भरी कँपकपी आने लगी। हमने अपने इस मान्य अतिथि की अपने यहाँ बारह हफ्ते तक लगातार सेवा-शुश्रूषा की और उनके स्वास्थ्य को टिकाये रखा, परन्तु यहाँ पेरिस में तो उनका बुरा हाल हो रहा है। और यहाँ एक उद्धत और झूठा अखबार-नवीस उनके कुटुम्ब का मित्र होने का दावा कर रहा है और अपने सवालों के जवाब के लिए शोर मचा रहा है। पर उसने अभी तक उन सवालों को लिखने तक की तकलीफ नहीं की।

वह मेरी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा और धमकी देते हुए बोला,—'अगर उन्होंने मुझसे मुलाक़ात न की तो मैं उनकी बुरी हालत कर दूँगा। मैं उन्हें नुक़सान पहुँचा सकता हूँ।'

मैं उसे जब बाहर छोड़कर आई तो मुझे ऐसा लग रहा था मानों मेरे चेहरे पर एक खूनी-के-से भाव हों। दूसरे दिन उसके संघ के पत्रों में मेरे और उसके मिज़ाज़ के नमूने ज़ाहिर होते हैं। गांधीजी के दृश्य का वर्णन करने में तो ये महाशय विन्स्टन चर्चिल से भी आगे बढ़ गये थे। गांधीजी का वर्णन करने में इन्होंने "बड़े विदूषक" और "खों-खों करता हुआ, थका-माँदा आदमी।" ऐसे शब्दों का प्रयोग किया था।

रात के आठ बज गये। एक विशाल सिनेमा थियेटर है। सभा के समय से पहले ही वहाँ लोगों की ख़ूब भीड़ जमा हो जाती है। टिकिटों के लिए बड़ी-बड़ी रकमें आ रही थीं, उन्हें लौटाया जा रहा था। हमारे लिए जो जगह रखी गई थी वहाँ तक पहुँचने के लिए हमें धक्का-मुक्की करनी पड़ी। लोगों में अपूर्व उत्साह है। सभागृह की मुख्य-मुख्य जगहों में सिनेमा के सरंजाम रखे गये हैं, परन्तु इन जगहों पर तो गांधीजी बोलनेवाले नहीं हैं, इसी को लेकर सभा के व्यवस्थापकों और इन सिनेमावालों में झगड़ा हो रहा है। बालिकाओं का एक स्वयंसेवक दल भीड़ को शान्त करने की कोशिश करता है। गरमी की तो आप बात ही न करें, इसका उपाय कौन कर सकता है? इसी कारण आदमियों की गरदन लचक रही है, और मुँह तो पसीने से तर-बतर हो रहे हैं। लोगों की भावनाएँ बढ़ती जाती हैं, और वह इसलिए कि थोड़े दिन पहले शहर में, राजा के राज्य में विश्वास करनेवाले लोगों ने सभाएँ की थीं और जलूस भी निकाले थे। लोगों का जमघट न जाने क्यों भयानक लगता है। मुझे तो ऐसे जमघट का कभी अनुभव नहीं हुआ है। उनकी भावनाएँ इतनी उग्र थीं कि वे समुद्र की लहरों की तरह आगे-पीछे हिलकर अशान्त और प्रक्षुब्ध हो रही थीं।

ऐसी जनता का विक्षोभ पहले न जाने कितनी बार हुआ होगा? परन्तु आज का यह प्रसंग तो अनोखा ही था। आज तो व्यास-पीठ पर मेरे सामने नई से नई

तरह के एक क्रांतिकारी बैठे हैं। वे शान्ति और अपनी आत्मा के दृढ़ विश्वास के साथ यह संदेश दे रहे हैं कि सत्य और अहिंसा दुनिया में बड़ी-से-बड़ी और सक्रिय ताक़त है, और इसी के द्वारा हम घमंडी सत्ता से मोर्चा ले सकते हैं।

रात के साढ़े दस बज जाते हैं। विशाल जनसमूह बिखर जाता है। और हम लोग अपने-अपने ठहरने की जगह का रास्ता लेते हैं।

रात के साढ़े ग्यारह बजे जिस समय हम लोग जाने को तैयार होते हैं उसी समय कुछ फोटोग्राफर हमारे यहाँ आ जाते हैं। मुझसे प्रवेश की इजाज़त चाहते हैं, और कहते हैं,—"हमें अन्दर आने की इजाज़त मिली हुई है।"

मैंने पूछा,—'किसकी ओर से।'

वे बोले,—'गांधीजी की ओर से।' वे सचमुच झूठ बोल रहे थे। इसलिए मुझे हँसी आ गई। वे लोग निराश हो चले जाते हैं। परन्तु फिर रात को एक बजे आ जाते हैं, और इतना शोर और गड़बड़ी करते हैं कि मादम गीज़ के पड़ोसियों ने अपनी नींद के हर्जाने का हज़ारों फ्रांकों का दावा उन पर कर दिया।

दूसरे दिन स्टेशन पर मिलने की सूचना में थोड़ी ग़फ़लत हुई। इसीलिए मैं जब प्लेटफार्मपर पहुँची तो देखा कि हँसमुख चेहरावाला जनसमूह गांधीजी को बिदा देकर लौट रहा था। साथ में पुलिस की एक टोली भी थी जो गांधीजी को सुरक्षित पहुँचाकर निश्चिन्त-सी नज़र आ रही थी।

मेरा पासपोर्ट, मेरी टिकिट, मेरा सामान और मेरा भोजन सब कुछ मेरी मण्डली के साथ था और हमारी इस छोटी-सी मुसाफिरी में पैसे की तो कोई खास आवश्यकता होती नहीं; इसलिए मेरे पास विलायत के कुछ सिक्कों की रेज़गारी और कुछ नोटों के सिवा और कुछ न था।

परदेश में मोटरवाले उचित भाड़े की अपेक्षा दुगुना ही माँगते हैं, ऐसी हालत में उन लोगों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्नेह-भाव कैसे कायम किया जा सकता है। परन्तु जब परदेश के लोग स्नेहवश होकर हम लोगों के लिए निःस्वार्थ होकर सभी तरह की सुख-सुविधा कर देते हैं तो उनके प्रति हमारे मन में कितना प्रेम उत्पन्न होता है! मैं गांधीजी की मण्डली में थी, इसलिए मुझे इस परिस्थिति में ज़रा भी

दिक्कत न हुई। मैं रात को जिन बहन के यहाँ सोई थी उनके साथ सुपरिन्टेण्डेण्ट के आफिस में गई, चुपचाप खड़ी रही (परभाषा जब न आती हो, तो यही रास्ता है) और अब क्या हो सकता है, इसका विचार भी अन्य लोगों पर छोड़ दिया। थोड़ी ही देर में मुझे एक हस्ताक्षरवाला कार्ड दिया गया और कहा गया कि अब पासपोर्ट, टिकिट अथवा रोकड़ा पैसा आदि किसी भी चीज की आवश्यकता नहीं है। मुझे कहा गया,—'आप जो दो-तीन घंटे बाद यहाँ आ जायेंगी तो दूसरी गाड़ी जो यहाँ से छूट रही है, उसमें आपको स्टेशन-मास्टर बिठा देगा। इस बीच गांधीजी को भी खबर पहुँचा दी जायगी, और आपको अपना पासपोर्ट रास्ते में कहीं मिल जायगा।' लोगों के समूह में एक भारतीय भाई थे। उनकी मेरे साथ किसी तरह की जान-पहचान नहीं थी। तो भी वे मेरे हाथ में कुछ पैसे रखकर चलते बने।

मैं आनन्द से एक और चक्कर लगा आई। दुबारा नाश्ता किया—फ्रांस में खाने-पीने का आनन्द तो हमेशा से है ही। और आखिर में ख़ूब शोभा के साथ मुझे गाड़ी तक पहुँचाया गया। मुझे पहले दर्जे का डब्बा बताया गया, इस पर मैंने कहा,—'मेरी टिकट इस समय जहाँ कहीं भी हो, पर वह तीसरे दर्जे की है।' परन्तु इस बात की किसी ने परवाह ही नहीं की।

मेरा पासपोर्ट और टिकिट जिस गार्ड ने मुझे लारोश स्टेशन पर लाकर दिया था, स्टेशन मास्टर, जिसने अपने मददगारों को बुलाकर मेरी यात्रा जल्द पूरी करने में मदद की; और अत्यन्त मनमोहक अदबवाला वेटर, जिसने मुझे भोजन और अखबार ही नहीं अपितु मेरी फाउन्टेनपेन में स्याही भी भर दी—इन सब हितेच्छुओं और मददगारों को मैं कैसे भूल सकती हूँ ?

बोलो फ्रान्स और फ्रान्स के लोगों की जय।

स्विट्ज़रलैण्ड में स्वागत

(१२)

स्विट्ज़रलैण्ड के विलनव गाँव में हम लोग पाँच दिन रहे। महर्षि रोम्याँ रोलाँ के दो बँगले हैं, वे भर गये ; और हम लोग जो बाकी रहे, सरोवर-किनारे के एक होटल में रहे। हम जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ सभी जगह बालक, स्त्री-पुरुष या परदेशी लोगों के छोटे-छोटे समूह हमारे इन्तज़ार में खड़े ही हो जाते थे, और ऐसा महसूस होता था कि ये लोग गाना गाने, वायलिन बजाने, गांधीजी को फूल देने या उनसे प्रश्न करने के लिए हमेशा आतुर रहते हैं।

एक बूढ़ा एक छोटे-से लताकुञ्ज में रहता था और वहीं पोस्टकार्ड, चाकलेट और ठण्डे पेय पदार्थों को बेचा करता था। वह तो हमेशा गांधीजी के दर्शन की प्रतीक्षा ही किया करता। मैं जब वहाँ से गुज़रती तब वह मुझसे कहता,—'यह गुलदस्ता मैंने महात्माजी के लिए ही रख छोड़ा है, यहाँ से गुजरते वक्त वे रुक-कर मेरे हाथों से इसे लेंगे तो मैं उन्हें अपने पक्षी भी दिखाऊँगा।'

एक बार अपने बारह फुट लम्बे चौरस बगीचे में ले जाकर उसने मुझसे कहा,—'देखो बहन, ये पक्षी कितने हिलमिल गये हैं!' उसने सीटी बजानी शुरू की। इतने में तो आस-पास के पेड़-पौधों से पक्षी उड़कर आये, और हमारे आस-पास पङ्ख फड़-फड़ाकर विविध रागों में गाने लगे।

बूढ़ा कहने लगा,—'मुझे विश्वास है, गांधीजी को ये पक्षी ज़रूर पसन्द आयेंगे।'

गाँव के बच्चों को जब मौका मिलता तब वे अपने मान्य अतिथि को गाना भी सुनाते; और ऐसे मौके उन्हें बहुत मिलते। एक सारंगीवाला बँगले की आधी सीढ़ियों पर चढ़कर खड़ा रहता, और गांधीजी जब नाश्ता करते तब उन्हें सारंगी बजाकर सुनाता। गाँवों के सामूहिक गायनों में गानेवाले पुरुषों ने गांधीजी को

जी-तोड़ मेहनत करके अच्छे-अच्छे राग सुनाये। एक-दो बार तो रोम्याँ रोलाँ ने स्वयं पियानो पर बिथोवेन के गीत गा-गाकर गांधीजी को समझाया और उन्हें मुग्ध किया।

बँगले के नीचे का एक विशाल चिलाँ नामक होटल का थोड़े समय से अंग्रेज़ तथा अमेरिकन बच्चों की पाठशाला के रूप में उपयोग होता था। जिस रात गांधीजी विलनव पहुँचे उसी रात वे वहाँ से गुज़रे, और 'रूल ब्रिटानिया' नामक गीत के स्वर उनके कानों में पड़े। दूसरे दिन पाठशाला के लड़के बगीचे के दरवाज़े के बाहर उनकी इन्तज़ार में खड़े रहे, और गांधीजी के गुज़रते ही उनके हस्ताक्षर माँगने लगे और उन्हें पाठशाला में पधारकर भाषण देने का निमंत्रण भी दिया।

महर्षि रोलाँ और गांधीजी की मुलाक़ात पहले कभी न हुई थी। और वे एक-दूसरे के साथ एक ही भाषा में बात भी नहीं कर सकते थे। रोलाँ तो बड़े भारी साहित्य-सम्राट्, संगीत-शास्त्री, इतिहासकार, नाटककार, उपन्यासकार और एकान्त-सेवी साधुजन हैं। 'जान क्रिस्टोफर' नामक उनका जो महान उपन्यास है, उससे उनके व्यक्तित्व की कुंजी ज़ाहिर होती है। और मैं मानती हूँ कि बिथोवेन के संगीत पर जो किताबें इन्होंने लिखी हैं उनकी दुनिया में बहुत बड़ी कीमत है। फ्रांस देश के निवासी ये महापुरुष तो विचारक और दूरदर्शी ऋषि, और भविष्य जाननेवाले भी थे, इसी लिए गतमहायुद्ध के समय इनके लिए फ्रांस में रहना बहुत मुश्किल हो गया था। 'युद्ध के पार' (एबव दी बैटिल) नामक उपन्यास इन्होंने लिखा था। इसका ध्येय मित्र-राष्ट्रों ने जो ध्येय युद्ध के लिए ज़ाहिर किये थे या गुप्त रखे थे, उससे मेल नहीं खाता था। इसीलिए इन्हें फ्रांस छोड़ना पड़ा था और स्विट्जरलैण्ड को अपना निवासस्थान बनाना पड़ा था। इन्होंने 'महात्मा गांधी' नामक पुस्तक लिखी, जिससे जहाँ-जहाँ मनुष्य रहते हैं वहाँ-वहाँ गांधीजी का नाम और उनका काम पहुँच गया। यह १९२२ की बात है। तभी से इन दो महापुरुषों के बीच मित्रता स्थापित हुई। ये लोग अनेक बार परस्पर पत्र-व्यवहार भी करते रहते हैं। पुनः परस्पर मिलने की अभिलाषा दोनों में बहुत थी।

दुर्भाग्य-वश रोलाँ अपंग हैं, अतः वे अपने सोने के कमरे में ही गांधीजी का

सत्कार कर सके। उन्होंने बहुत देर तक बातचीत की, इसके बाद हम लोगों को अन्दर बुलाकर उन्होंने हमारा भी यजमान के साथ परिचय कराया। मुझे लगता है, उस समय हम लोग इन दो महापुरुषों की ख़ुशी का कुछ अनुभव कर सके थे, और इसका असर हम लोगों के हृदय पर भी हुआ। छोटे-से कमरे में सूर्य का प्रकाश खूब अच्छी तरह आ रहा था। उसकी दीवारों का जो भाग पुस्तकों की आल्मारियों से बचा हुआ था, वहाँ रोलाँ को जिन व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा है, ऐसे व्यक्तियों के सिरों की शिल्पाकृतियाँ रखी हुई हैं। वे व्यक्ति ये हैं,—गेटें, बिथोवेन,टालस्टाय, गोर्की, गांधीजी, रवीन्द्रनाथ और आईन्स्टीन।

दोनों बँगलों के एक-एक कमरे में जत्था-बन्द किताबें हैं। रात को बत्ती बुझाना कठिन हो जाता था, क्योंकि मेरे दरवाजे के पास की आलमारी में टाऊक्नीट्ज़ के उपन्यास सजाये हुए थे। वर्जीनिया वल्फ के 'आरलेण्डो' नामक उपन्यास के फ्रेंच अनुवाद के पन्ने मैं पलटने लगी, इसलिए मुझे कपड़े उतारने में बहुत ही देर लगी। 'आफतों के अभ्यास की सामग्री' नामक मासिक के तीन वर्ष की फाइलें मेरे पैरों के सामने पड़ी थीं, परन्तु ये घृणा पैदा करनेवाले लेख नींद लानेवाले नहीं थे। दिन शान्ति से निकालने के लिए मैंने शौचालय में से एक किताब उठा ली। गांधीजी थोड़े समय से इस किताब को अपने साथ ला रहे थे। इसका नाम था 'दि लिटिल बाइबल।' छोटी-सी सुन्दर छपाईवाली किताब है और इसमें बाइबल के अच्छे-से-अच्छे उद्धरण दिये हैं। मैंने इसे खोला और एक अच्छी कहानी पढ़ डाली। इस तरह पढ़ते-पढ़ते न जाने मुझे कब नींद आ गई। रात को जागी तो बिजली तो जल रही थी। मैंने बटन दबाकर बिजली को बुझाया। मित्र जैसे ऊँचे प्रचण्ड पहाड़ों के पीछे निकले हुए तारे खिड़कियों में से झांक रहे थे। मुझे फिर नींद आ गई।

सुबह साढ़े पाँच बजे मीरा बहन ने मुझे जगाया। मैंने कपड़े पहने और गांधीजी की किताब फिर शौचालय में रख दी। नीचे के एक कमरे में फर्श पर बिस्तर बिछाकर महादेव, प्यारेलाल और देवदास सो रहे थे; उनकी नींद में खलल न हो, इस सावधानी से मैं नीचे उतरी।

परन्तु मैंने अगले कमरों में से पुरुषों की आवाज़ सुनी। एडवर्ड प्रीवा, पीयर सेरेसोल को लेकर गांधीजी के साथ सुबह घूमने के लिये आए थे। इन्हें देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ। सितम्बर में जब गाँधीजी मार्सेल्सके बन्दरगाह पर उतरे थे तभी से सेरेसोल से मिलना चाहते थे। उनकी आतुरता का एक विशेष कारण था। उन्हें किसी ने कहा था,—'सेरेसोल को तो आपको ढूँढ़ निकालना होगा, क्योंकि वे कभी किसी के सामने नहीं आते।' सेरे सोल उस समय वेल्स में थे, और स्विट्ज़रलैण्ड जाने की तैयारी में थे। उन्हें उसी समय तार दिया गया था, तो भी लन्दन होकर किंग्सली हाल नहीं आये थे।

इस लोकनायक ने उस समय ऐसा जवाब दिया था,—"परन्तु मैं इनका अमूल्य समय क्यों लूँ ? उन्हें तो इससे भी महत्व के और भी काम करने हैं।"

इस समय भी विलनव और सेरेसोल के निवासस्थान में थोड़े ही मीलों का फ़ासला था। और सुबह घूमने जाने की तो हर किसी को छूट थी ; तो भी उनके मित्र प्रीवा उन्हें घसीटकर यहाँ ले आये थे, ऐसा कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इनके शान्त, निरन्तर और कुशल सेवा-कार्य के मुकाबले में हमारा क्षुद्र अहङ्कार और अभिमान-भरे प्रलाप में कितना मिथ्याडम्बर भरा हुआ है ! स्विट्ज़रलैण्ड के पुराने-से-पुराने अमीरी कुटुम्बों में से पीयर का जन्म हुआ था। ये सख्त सैनिक अनुशासन और अमीरी वातावरण में पले थे। इनके विषय में लोग यह उम्मीद कर रहे थे कि ये किसी बड़े भारी सरकारी ओहदे को सम्भालेंगे। परन्तु गत महायुद्ध में उन्होंने पुराने चोले को त्यागकर नया ही रास्ता अख़्तियार किया।

घूमने में हम लोग पाँच थे। तारों के प्रकाश में हम लोगों ने बगीचे, खेत और टेढ़ी-मेढ़ी गलियों को पार किया। एक झरने को भी पार किया और पहाड़ के पथरीले रास्ते पर चले।

गांधीजी ने कहा,—'मि० सेरेसोल, मुझे अपनी प्रवृत्तियों को विशद रूप से बताओ, मैंने उनके बारे में कुछ सुना है।

पीयर ने अपनी आप-बीती कही। गत महायुद्ध में एक ग्रामीण पाठशाला के शिक्षक ने ईसा-मसीह के नाम पर तीन महीने तक सैनिकरूप में काम करने से

इन्कार कर दिया था। परिणामस्वरूप पहले उसे पागलखाने में और बाद में कैदखाने में डाल दिया गया। इसके बाद पीयर ने स्वयं यही रास्ता अख़्तियार किया और बहुत-से उनके अनुयायी हुए। आज भी ये लोग सेना की नौकरी से इन्कार करते हैं और उनके लिए जेल जाते हैं। इन सब लोगों को सेवा तो करनी है, पर उनका रास्ता दूसरा है—वे नागरिकों के नाते सेवा करते हैं। संसार के किसी भी भाग में किसी भी देश के मनुष्य दुःख और ज़ुल्म से यदि कष्ट पाते हों तो इन लोगों का कर्तव्य है कि उन ज़िन्दा और मुसीबतज़दा लोगों की ये सेवा करें। सेरेसोल ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय-सेवा सेना का जिक्र किया। इस सेना में फ्रेंच हैं, जर्मन हैं, स्विस हैं और अंग्रेज भी हैं। वे स्वेच्छा से सैनिक-अनुशासन से भी कठिन अनुशासनों का पालन कर हर वर्ष महीनों तक सेवा का काम करते हैं। एक समय आस्ट्रेलिया में बर्फ के तूफान के कारण एक समूचा गाँव गर्क हो गया था, उसकी पुनर्रचना में इन लोगों ने मदद की थी और हर वर्ष वे कुछ-न-कुछ नया रचनात्मक कार्य करते ही रहते हैं। इस साल ग्रीष्म ऋतु में इन लोगों ने वेल्स के दक्षिण भाग की एक जगह पर काम किया और बेकार खान के मजदूरों की मदद से आस-पास के तमाम क्षेत्र में एक नई आशा की लहर फैला दी थी। पीयर के भाई कर्नल सेरेसोल के अधीन ये लोग सैनिक अनुशासन का अभ्यास भी करते हैं। जरूरी सैनिक नौकरी के बजाय, वे लोग जो यह सेवा कर रहे हैं, उसे सरकार मान्य करे ऐसी वे कोशिश कर रहे हैं। इन सेवाओं को सरकार स्वीकार करे इसके लिए हर साल स्विस पार्लमेण्ट में एक बिल भी रखा जाता है, और उसमें अब तक एक चौथाई सदस्यों ने अपनी सहमति प्रकट की है।

गांधीजी जब इंग्लैंड में थे तभी उन्होंने ये बातें सुनी थीं। तो भी उन्होंने यहाँ ये सब बातें खूब ध्यान से सुनीं। लन्दन में सुबह घूमते समय मैं जब कभी जान-बूझकर बो मुहल्ले के लोगों के जीवन के विषय में, अथवा युद्ध-समय के अपने अहिंसावादी अनुभवों के विषय में या स्वेच्छा से गरीबों के-से किये परीक्षणों के बारे में बात करती, तब गांधीजी ऐसे प्रसंगों को छोड़कर स्वयं ही अधिक बोलने का प्रयत्न करते। मैं जब कभी बोलती थी, तब वे बीच में कभी टोकते नहीं थे। शायद

यह उनका अतिथि-विषयक विवेक होगा। परन्तु मैं समझती हूँ कि उन्हें मेरी बातें सुनकर आनन्द होता होगा। मैं जब बोलती तो एक लम्बा भाषण ही दे डालती, क्योंकि मैं यह निश्चय कर चुकी थी कि उन्हें बोलने का अधिक श्रम न करने दूँगी। परन्तु हमेशा वे ध्यान देकर सुनते, क्योंकि जब कभी मैं किसी स्त्री की बात दुबारा कहती तो वे झट कह उठते,—'मुझे याद है, मुझे याद है, तुमने पहले भी इसके विषय में मुझसे बात की थी।'

मैं समझती हूँ, पीयर की पाँच मिनट की बात के बाद गांधीजी बीच में बोले। पीयर की सेनाओं की अनेक क्रियाशील प्रवृत्तियों के कारण जो सवाल उठ खड़े हुए थे उनके बारे में उन्हें चर्चा करनी थी।

गांधीजी,—"अब मैं आपके सामने कुछ बातें रखूँ? आपको अब यह लड़ाई अधिक समय तक नहीं चलानी चाहिए। ज़रूरी सैनिक नौकरी के लिए जब सरकार बुलावे तभी सिर्फ़ वर्ष में एक ही बार आप लोगों को महायुद्ध का विरोध क्यों करना चाहिए? आप लोगों की ज़िन्दगी का एक-एक दिन युद्ध से रँगा हुआ है। तुम लोग जब तक राज्य से सुख-सहूलियत की माँग करते हो तब तक वे लोग तुम्हें रोक रखते हैं।"

पीयर को अपने विषय में बात करना तो अच्छा ही न लगता था। इसलिए जब गांधीजी बोलने लगे तो उन्हें शान्ति मिली। इसके बाद कभी आश्चर्योद्गार, संक्षिप्त प्रश्न या सम्मति-सूचक वाक्य के सिवा वे शायद ही कुछ बोले हों।

गांधीजी,—"१९१४ में मेरे विचार ऐसे न थे। उस समय तो मुझे नागरिक के नाते सभी कर्तव्यों को पूरा करना था। इसलिए मैंने बिना शर्त ही ब्रिटिश-सरकार के चरणों में अपनी सेवा समर्पित कर दी। मैं उस समय समझता था कि ब्रिटिश सरकार मेरे देश को ज़ुल्म से बचा रही है; इसलिए मैं समझता था कि मुझे भी एक अंग्रेज नागरिक की तरह पूरी-पूरी मदद करनी चाहिए। मुझे रेडक्रास का काम सौंपा गया। मैंने मन में कहा,—'यह बहुत ही अच्छा हुआ।' क्योंकि मैं हिंसा नहीं करना चाहता था। पर इतने ही से मैंने अपनी आत्मा को फुसलाया नहीं। रेडक्रास के काम में हिंसा कम है, ऐसी डींग भी मैं नहीं हाँक सकता था। लड़ाई के समय में

इसका भी तो वही परिणाम होता है; क्योंकि इसी की बदौलत तो दूसरे मनुष्य हिंसा करने के लिए तैयार होते हैं। इन लोगों ने मुझे बन्दूक भी दी। यदि मुझे उसे चलाने की तालीम दी गई होती तो मैं उसका उपयोग भी करता। मैं ज़रूर बंदूक चलाता। हाँ, अगर बन्दूक चलाते-चलाते मेरे अंग ही काँप जाते तो बात दूसरी थी। मैं जब कभी भी अपने जीवन में कोई बुरा काम करने गया हूँ, तब ऐसा ज़रूर हुआ है।

"मैंने उस समय यह मान लिया था कि लड़ाई में हृदय से मदद देना ही हमारे देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति का सच्चा रास्ता है। इसके पहले झुलुओं का बलवा हुआ और उसके प्रति मेरी सहानुभूति थी। मुझे उनकी मदद करने में बहुत ही आनन्द आता, पर उस समय मेरे अन्दर इतनी ताक़त नहीं थी कि मैं उनकी मदद कर सकता। न मुझमें बल था, न नियंत्रण और न पूरा-पूरा अनुभव ही। मुझे उन्हें मदद करने का कोई रास्ता नज़र नहीं आया। मेरे पास उन्हें देने के लिए कोई संदेशा भी नहीं था। मैं क्या कर सकता हूँ? मैंने विचार किया कि मैं ब्रिटिश-राज्य-तंत्र में शामिल होकर उसे मदद करूँ और इस प्रकार राजतंत्र की कमियों को दूर करने का मैं प्रयत्न कर सकूँगा। मैंने वहाँ की सरकार को अपनी सेवा समर्पित की। मुझे घायलों को उठा ले जाने का काम सौंपा गया। यह तो मेरे अनुकूल कार्य था। मैं ऐसा सोच रहा था कि मुझे घायल झुलुओं की सेवा का अवसर मिले तो बहुत अच्छा हो। सेनाओं के प्रमुख डाक्टरी अधिकारी में कुछ मानवता थी। इसलिए मैंने जब उनसे कहा कि मुझे औरों की अपेक्षा घायल झुलुओं की सेवा करना अधिक अच्छा लगेगा।' तब वे बोले,—"इसे ही तो प्रार्थना का जवाब कहा जाता है न।" बात ऐसी थी कि झुलु कैदियों को पीटा गया था और उनके घावों से पीप निकल रही थी। गोरे तो उनकी सेवा करने को तैयार ही नहीं थे। इसलिए मैंने ही उनकी दिन-रात सेवा की। इन्हें सीखचेवाली कोठरियों में बन्द रखा जाता था। इनके घावों की मरहम-पट्टी जब हम लोग करते थे, तब गोरे सैनिक देखते रहते थे और उन नीग्रो लोगों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिये वे हम पर कटाक्ष करते और हँसते थे। वे लोग घायलों पर गालियों और धमकियों की बौछार करते। 'हम लोगों को तुम लोग

मरने क्यों नहीं देते ? विद्रोहियो ! दुष्ट नीग्रो !' यह विद्रोह जिस रीति से दबा दिया गया वह रीति भयानक थी। सशस्त्र सैनिक निःशस्त्र लोगों पर टूट पड़ते। यह देख-कर मुझे सबक़ हासिल करना चाहिए था। इस सबके होते हुए भी मैंने ब्रिटिश राज-तंत्र में रहने की पूरी-पूरी कोशिश की। मैंने राज्य के अन्दर रहकर अपने आदर्शों को अमल में लाने की कोशिश की, इससे कुछ भी न हुआ। परन्तु इन प्रयत्नों से मैंने बहुत कुछ सीखा। दक्षिण-अफ्रिका में सरकार की सेवा करने के बाद भी मैं झुलुओं के प्रति उनके खराब व्यवहार को सुधार न सका। इसके अलावा गत महायुद्ध के दरमियान में राज्य की सेवा करने के अपने कर्तव्य को ध्यान में रख ब्रिटिश-साम्राज्य की सेवा करता रहा। और सरकार ने मुझे जो काम बताया वही मैं करता रहा, तो भी उस युद्ध के अन्त में मैं अपने देश की स्वतंत्रता हासिल न कर सका। इसलिए उसके बाद मैं साम्राज्य से अधिक सहयोग न कर सका।"

पीयर ने कहा,—"गांधी, जब राज्य या सरकार विदेशी हो तो मैं ये बातें समझ सकता हूँ। परन्तु इस यूरोप में तो हमारी ऐसी स्थिति नहीं है। परदेशी-सरकार के सामने आदमी जूझे और लड़े तो यह तो ठीक और स्वाभाविक ही है। पर जहाँ सरकार अपनी खुद की हो; और हम लोग यह भी जानते हों कि भले ही सरकार खराब क्यों न हो, वह तो अपने देशवासियों के सैकड़ों वर्षों के बलिदान और धैर्यपूर्वक किये गये अनेक प्रयत्नों का फल है। और पीढ़ी दर पीढ़ी ज्यों-ज्यों नया प्रकाश फैलता गया हो, त्यों-त्यों वह सरकार विकसित भी होती गई हो तब तो हालत दूसरी ही हो जाती है न।"

गांधीजी,--"राज्य की रचना ही इस प्रकार की होती है कि आदमी उसमें रह-कर नया रास्ता निकाल ही नहीं सकता। वह राज-काज में जरा भी असर नहीं डाल सकता। तुम लोग बन्धन में जकड़े हुए हो। मैं तो तुम्हें राज्यतंत्र से बिलकुल अलग देखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ, म्युरियल गरीब स्त्री-पुरुषों का ऐसा आन्दो-लन खड़ा करे कि ये लोग सरकार की तरफ से मिलनेवाले पैसों को लेने से साफ़ इन्कार कर दें। वे स्वेच्छा से ही काम करने को तैयार हो जायँ, परन्तु मुफ़्त पैसा न लें। धनी लोग गरीबों को कुछ दिन पैसे का लालच देकर उनके मन को बदल

सकते हैं। यही उनके लिए सबसे खराब चीज़ है। ऐसा सन्तोष तो बहुत ही सरल और सुलभ है। वे लोग ऐसा सन्तोष पाकर उसी के आसरे पर बैठे रहते हैं और ऐश-आराम और गरीबो के बीच का जो घोर अन्याय है, उसे वे भूल जाते हैं। ऐसे स्वयं-सेवक-दलों द्वारा भोगा गया कष्ट कभी निष्फल नहीं जाता और उनकी अहिंसा का ज़बरदस्त प्रभाव पड़ता है। वे सभी जगह बुलन्द आवाज़ से सत्य की गवाही देंगे। लोगों को तब वास्तविक चीजों पर विचार करना पड़ेगा। इन्हीं बातों के प्रति, जो बिलकुल सही हैं, आज वे लोग लापरवाही करते हैं। वह उन्हें अब छोड़नी पड़ेगी। सादे और गरीब लोग जब किसी सत्कार्य के लिए कष्ट-सहन करते हैं तो उसका यही अर्थ होता है कि वे आत्म-शुद्धि कर रहे हैं ; और आखिर में उन्हें विजय मिलकर ही रहती है।"

पीयर बहुत ही गंभीर आवाज़ में बोले,—"परन्तु गांधीजी, मैं समझता हूँ, हमारे यूरोप के लोग आपके हिन्दुस्तान के लोगों से बिलकुल भिन्न होते हैं। मुझे डर है कि वे ऐसे कामों के लिए शायद ही तैयार हों।"

बातचीत जरा रुकी। इसके बाद बहुत धीमे सौम्य स्वर में गांधीजी बोले,—"मि० सेरेसोल, आपको विश्वास है कि लोग तैयार नहीं हैं?" यह कहते हुए उनके चेहरे पर इस आक्षेप के लिए खेद के चिह्न ज़रूर नज़र आ रहे थे।

सब लोग शान्त हो गये। गांधीजी के कथन में जो आवाहन था, उसे स्वीकार करते हुए सेरेसोल ने कहा—"ओ हो! आपके कहने का आशय मैं समझ गया। आपकी बात ठीक है। हम लोग स्वयं ही निकम्मे हैं। हम लोगों में नेताओं की कमी है। आप यही कहना चाहते हैं न?"

गांधीजी पहले की सी ही धीमी आवाज़ में बोले,—"मि० सेरेसोल, यह तो मुझे मानना ही पड़ेगा कि यूरोप में मुझे वास्तविक नेता नहीं नज़र आये—वास्तविक से यहाँ मतलब यह कि आधुनिक वातावरण के मुताबिक।"

पीयर,—"आपकी दृष्टि में इस ज़माने के नेताओं में कौन-से गुण होने चाहिए?'

गांधीजी,—"चौबीसो घण्टे परमात्मा से साक्षात्कार।"

"और कोई यह पूछे कि 'ईश्वर से आप क्या समझते हैं।' तो?"

"तो मैं कहूँगा कि 'सत्य ही परमेश्वर है और अहिंसा उसकी प्राप्ति का साधन है।' नेता में आत्म-विजय की शक्ति पूरी-पूरी होनी चाहिए। क्रोध, भय और असत्य को तो उसे अपने जीवन से निकाल बाहर करना चाहिए। मनुष्य को शून्य की तरह हो जाना चाहिए। उसे जीभ के स्वादों को त्याग देना चाहिए। उससे भोग-विलास का आनन्द नहीं लिया जा सकता। ऐसी आत्म-शुद्धि से ही उसमें ताक़त आती है। यह शक्ति मनुष्य की अपनी नहीं होती है, अपितु ईश्वर-प्रदत्त होती है। मुझमें ताक़त कहाँ है? मेरी क्या बिसात है? पन्द्रह वर्ष का लड़का मुझे धक्का मारकर गिरा सकता है। मैं तो बहुत तुच्छ हूँ। परन्तु मैंने भय और वासना से मुक्ति पा ली है, इसलिए मैं जानता हूँ कि ईश्वर की क्या ताक़त है। मैं कहता हूँ कि आज अगर सारी दुनिया एक तरफ होकर यह कहे कि ईश्वर नहीं है, तो उन सबके मुक़ाबले में खड़ा होकर कहूँगा—'ईश्वर है'। मैं तो निरन्तर इस चमत्कार का दर्शन करता रहता हूँ।

"तुम्हारा धर्म अभी युवावस्था में है। ईसा मसीह ने एशिया से आती हुई एक लहर को पकड़ा और उसे सारी दुनिया को दिया। पश्चिम में इस लहर के साथ अनेक मिलावट हो गई है। तुमने इसके साथ जो राय-व्यवस्था जोड़ दी है, उसका इससे मेल नहीं खाता। इसीलिए मैं अपने को ईसाई नहीं कह सकता। क्योंकि तुम लोगों ने इस धर्म की आड़ में जो राज्य-व्यवस्था खड़ी की है, उसे मैं नहीं मानता। उस राजतन्त्र का आधार पशुबल है। उस राजतन्त्र के अन्दर घुसा हुआ जो भ्रम है, उसे दुनिया के सामने स्पष्ट कर देना हिन्दुस्तान के हिस्से पड़ा है। हिमालय पहाड़ की चढ़ाइयाँ हमारे ऋषियों के हड्डी के ढाँचे से सफेद हो गई हैं। ये ऋषि ध्यान, अभ्यास और आत्म-शुद्धि में निमग्न हो गये थे। ये लोग सैकड़ों वर्षों से ईश्वर से उसके गूढ़ तत्त्व के सत्य को पाने के लिए अविरत कोशिश करते आये हैं; और वे हमसे कहते हैं 'सत्य ही परमेश्वर है, और अहिंसा उसकी प्राप्ति का उपाय है।'

"मैं यरवदा जेल में था, तब मैंने पूज्य-भावपूर्वक सभी धर्मों का अभ्यास किया। वास्तव में इस्लाम भी तो शान्ति का धर्म है। 'इस्लाम' शब्द का अर्थ

ही शान्ति है। परन्तु वह भी अभी युवावस्था में है। मुहम्मद पैग़म्बर एक ही साथ कई दिनों के लिए एकान्त में चले जाते थे, और ख़ुदा से अधिक सत्य की माँग के लिए विनती करते थे। लौटकर उन्हें जो सत्य हासिल होता था, उसे दूसरों के सामने प्रकट करते थे। अनेक बार ख़ुदा उन्हें उनके सवालों का उत्तर नहीं देते थे। तब वे उमर की सलाह लेते थे। एकबार पैग़म्बर साहब ने कहा,—'उमर, हम लोग इन दुश्मनों से लड़ें या सुलह करें?' उमर बोले,—'मैं क्या जानूँ? ख़ुदा से पूछो।' पैग़म्बर साहब बोले,—'बेवकूफ! तुम क्या यह समझते हो कि मैंने नहीं पूछा? मुझे यदि ख़ुदा ने जवाब दिया होता तो मैं तुमसे पूछता ही क्यों?"

इतना अधिक बोलने के लिए दोपहर को मैंने गांधीजी को उलाहना दिया, इसलिए उन्हें सुबह का समय याद आया और वे हँसे। "आज सुबह घूमने में कितना आनन्द आया? ऐसा अनुभव मैंने इससे पहले कभी नहीं किया। मेरे मन में जो कुछ था, वह सब मैंने कह डाला। उस युवक ने मेरी वाणी को प्रोत्साहित किया था। वह बहुत ही भला आदमी है।"

मैं हँसी,—"बापू। ऐसा आप नहीं कह सकते? वे बहुत ही कम बोले थे। आप ही बीच में बोलने लगे थे। आप हमेशा ही ऐसा किया करते हैं।"

"नहीं, उसी ने मुझे प्रेरित किया। वे मौजूद थे, इसीलिए मैंने इतनी सब बातें कह डालीं। मैंने जितने भी उत्तम आदमी देखे हैं, वे उनमें से एक हैं। मुझे किसी की बातों को अधिक सुनना नहीं पड़ता, मैं इसके बग़ैर ही आदमी की अच्छाई-बुराई का निर्णय कर सकता हूँ। कहा नहीं जा सकता कि हज़ारों मनुष्यों से मुझे मिलना पड़ता है, इसीलिए यह ऐसी आदत हो गई है।"

स्विट्ज़रलैण्ड में लोगों के बड़े-बड़े समूहों को गांधीजी का भाषण सुनने का मौक़ा मिला। लोसा की आम-सभा एक बड़े भारी चर्च में हुई थी। चर्च ने अपने विशाल घण्टे से लोगों को इस सभा की सूचना दी। रास्तों पर लोगों की भीड़ जमा हो गई और आना-जाना मुश्किल हो गया। परन्तु गांधीजी को तो जनता से प्रेम है, इसलिए उन्होंने मोटर में बैठने से साफ इन्कार कर दिया। चर्च के दरवाजे तक ही चलकर जाना था, पर इतना चलने में भी काफ़ी देर हो गई।

उनके चर्च में प्रवेश करते ही एक वायलिनवाले ने उनका स्वागत किया, और वह उनके आगे वायलिन बजाता-बजाता उन्हें व्यासपीठ तक ले गया ; और इस समय सभी श्रोताओं ने खड़े होकर उनका स्वागत किया।

सभापति ने अपने भाषण में कहा,—"महात्मा गांधी ! आप हमारे देश में पधारे हैं, इससे हमें अपार ख़ुशी हो रही है। हम आपको जवान भारत का नेता समझते हैं। आप ही भारत को स्वतंत्रता तक पहुँचा सके हैं। हम यूरोपवासी डरते हैं,—हमें अज्ञात वस्तुओं का डर है, गरीबी का भय है, जेल का डर है और डर है कष्ट-सहन का। परन्तु आप तो इन सभी चीज़ों का स्वागत करते हैं। आप इन्हें ख़ुशी से स्वीकार करते हैं। आप निडर हैं। हमें तो सिर्फ ईसा-मसीह का गिरिप्रवचन कण्ठाग्र है, आप उसे समझते हैं और उसके अनुसार करते हैं। हम लोग ईश्वर और शान्ति-सम्राट् ईसा के प्रति श्रद्धा रखते हैं, और आपके सामने नम्रता का अनुभव कर रहे हैं।"

उत्तर में गांधीजी ने कहा,—"हमने अपनी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जिन उपायों की आजमाइश की है, उनके बारे में आप कुछ जानना चाहते हैं। पराधीन देशों ने आज तक स्वतंत्र होने के लिए जिस तरह का शस्त्र-प्रयोग किया है, वह तो आज तक का इतिहास आप लोगों को बतायेगा। पर हम लोग जान-बूझकर अहिंसक साधनों को ही पकड़े हुए हैं। हमें महसूस होता है कि हम अपने ध्येय की तरफ आगे बढ़ रहे हैं। मैं जानता हूँ कि यह तो परीक्षा मात्र है। यह परीक्षा पूरी तरह सफल हुई है, ऐसा दावा मैं नहीं कर सकता। पर इतना तो मैं अवश्य कहूँगा कि उसे इतनी सफलता तो मिली ही है कि तुम लोग उसका अभ्यास करो। यह प्रयोग यदि सफल होगा तो यह समझा जायगा कि भारत ने विश्व-शान्ति में अपना इतना पार्ट अदा कर लिया है।

"मैंने जो बात पेरिस के लोगों को कही, वही आप लोगों को कहनी है। मैं देख रहा हूँ कि सारे पश्चिम का हृदय एक तरह से व्याकुल हो गया है। जिस सैनिक-भार के कारण इस समय यूरोप दर्द से कराह रहा है, उस बोझे से आप लोग भी थक गये हैं। अपने मानव-बन्धुओं के रक्त-प्रवाह की तैयारी देखकर आप

लोगों को घृणा और कँपकँपी होती है। गत युद्ध को जो 'महान्' विशेषण लगाया गया था, वह ग़लत है। इस युद्ध ने आपको और सारी मानव-जाति को अनेक अमूल्य सबक दिये हैं। उसने आपको मनुष्य-स्वभाव के बारे में अनेक आश्चर्य-जनक चीजें बताई हैं। आप लोगों ने यह भी स्पष्ट देखा कि इन युद्धों को जीतने के लिए चाहे जैसा छल-कपट, झूठ और धोखेबाज़ी करने में किसी तरह की कमी न की गई। और यह करने में लोग उचित-अनुचित का भी ख्याल न करते थे। तुम्हें अपने 'शत्रु' के नाश के लिए कोई भी साधन अनुचित नहीं प्रतीत होता था। एकाएक, क्षण-भर में ही आपके जवानी के दोस्त आपके कट्टर शत्रु बन गये, एक भी घर सुरक्षित न रहा और एक भी चीज सही-सलामत नहीं बची। पश्चिम के इस तथा-कथित-सुधार को जब तराजू में तोला गया तो वह अधूरा निकला।

"अब बहुत-से देशों की जनता गरीबी के किनारे तक पहुँच गई है। यही युद्ध का प्रत्यक्ष और सीधा-सादा परिणाम है। पैसा और कूटनीति दोनों का दिवाला निकल गया है। हम लोग अब भी इन दोनों के इतने नज़दीक हैं कि हम इनका वास्तविक परिणाम आँक नहीं सकते। और यह बुराई सिर्फ यूरोप की ही हद में हो सो बात नहीं। वह एशिया में भी फैल गई है। प्रत्येक वस्तु इस समय अस्त-व्यस्त हुई नजर आती है। भारत से और सिर्फ भारत से ही आशा का एक संदेश आ रहा है। भारत अहिंसा और सत्य से अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त करने की कोशिश कर रहा है। गत ग्यारह वर्षों से वह इन साधार साधनों की आजमाइश कर रहा है। इस शान्ति-मय आन्दोलन में हजारों स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया है। करोड़ों मनुष्य यदि खून का एक कतरा बहाये बिना अपनी छिनी हुई आजादी पुनः प्राप्त करने में सफल होंगे तो यह दुनिया के लिए एक बड़ा भारी सबक़ होगा। आप लोग इस समय किसी ऐसी वस्तु की खोज में हैं, जिसे युद्ध की जगह रखा जाय। मैं यह कह सकता हूँ कि वह नैतिक चीज़ भारत का यह परीक्षण ही हो सकती है।

"पूरी आत्मश्रद्धा से अभी इस बात को नहीं कहा जा सकता। परन्तु मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप वहाँ की परिस्थिति का गम्भीरता से अध्ययन

करें। निष्पक्षता से अभ्यास कर जब आप यह पूरी तरह समझ जायँ कि यह आन्दोलन प्रामाणिक है, तभी आप उसमें सहयोग दें, उससे पहले नहीं। आप लोग उस आन्दोलन के बारे में यूरोप तथा अन्य देशों में लोकमत तैयार कर सकते हैं। इस तरह यह एक अमोघास्त्र हो जायगा। अहिंसा का यह तरीका सम्पूर्णतः लोकमत पर आधारित है। और यह जगह-जगह दुःख से पीड़ित लोगों की आवाज़ है।

"दो आपस में लड़नेवाले देशों को यदि स्विट्ज़रलैण्ड से होकर गुज़रना होता तो वे देश स्विट्ज़रलैण्ड से भी लड़ते। परन्तु कोई विदेशी सेना दूसरे राज्य पर हमला करने के लिए स्विट्ज़रलैण्ड में से गुज़रना चाहे और तुम लोग उसे गुजरने दो तो यह तुम्हारी नामर्दी होगी। मैं यदि स्विट्ज़रलैण्ड का नागरिक या उसके समूह-तन्त्र का प्रधान होऊँ तो चढ़ाई करनेवाली सेना को एक भी साधन-सामग्री न देने की एक-एक नागरिक से ज़बरदस्त अपील करूँ और दूसरी बात यह करूँ कि ज़िन्दा स्त्री-पुरुषों की एक दीवार खड़ी करूँ, और उन चढ़ाई करनेवालों से उस पर से गुज़रने को कहूँ। आप कहेंगे यह चीज़ सहन नहीं हो सकती। मैं कहूँगा नहीं, यह असम्भव नहीं है। गत वर्ष हमने कर दिखाया कि यह वस्तु हो सकती है। हमारे यहाँ स्त्रियाँ अपना व्यूह रचकर छाती निकालकर खड़ी रहीं और ज़रा भी न डिगीं। पेशावर में हज़ारों लोगों ने गोलियों की बौछार सही थी। कोई सेना तुम्हारे देश में से गुज़रना चाहती हो, उस समय तुम उसके सामने ऐसे ही स्त्री-पुरुषों के व्यूह की कल्पना करो। शायद वह सेना उन पर से गुजर भी जाय, तो भी तुम्हें तो विजय ही मिलेगी, क्योंकि फिर कोई सेना ऐसी घृणित परीक्षा न करेगी। अहिंसा निर्बलों का शस्त्र नहीं है, और न कभी था। यह तो कठोर-से-कठोर हृदयवाले का शस्त्र है।"

स्त्रियों को सम्बोधित कर गांधीजी ने कहा,—"आप लोगों ने जो सन्देश अपने लिए माँगा है, उसे देने की मुझमें ताक़त है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। अगर आप लोग नाराज़ न हों तो आपके लिए मेरा यही संदेशा है कि आप लोग भी भारतीय नारियों की तरह, जिस तरह वे गत वर्ष एक साथ जागृत होकर खड़ी हो गई थीं, उसी तरह जागृत होकर आप भी अहिंसा का अङ्गीकार करें। मुझे पूरा

विश्वास है कि यूरोप यदि अहिंसा को स्वीकार करेगा तो वह यूरोप की स्त्रियों द्वारा ही होगा। अहिंसक युद्ध की यही खूबी है कि उसमें स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह ही अपना पार्ट अदा कर सकती हैं। हिंसक युद्ध में स्त्रियों को ऐसा कोई अवसर नहीं मिलता। परन्तु हमारे गत अहिंसक युद्ध में स्त्रियों ने पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक रूप से भाग लिया था। कारण इसका बहुत ही साधारण है। अहिंसक युद्ध में कष्ट-सहन की आवश्यकता बहुत अधिक होती है। और स्त्रियों के सिवा ऐसा कौन है जो इसे पवित्रता और कुलीनता से पूरा कर सके? भारतीय स्त्रियों ने परदे का बहिष्कार किया और देश के लिए काम करने को निकल पड़ीं। उन्होंने देखा कि देश उनसे घर सँभालने की अपेक्षा और भी काम कराना चाहता है। उन्होंने नमक बनाया, शराब और विदेशी कपड़ों की दूकानों पर धरना दिया। और इन दोनों चीजों के बेचनेवालों और खरीदारों से उन चीज़ों को छुड़वाने का प्रयत्न किया। बहुत रात गये वे लोग हृदय में हिम्मत और उदारता लेकर शराबियों के पीछे-पीछे शराबखानों तक जातीं। ये जेल में भी गईं; और उन्होंने जैसी लाठियों की मार खाई वैसी पुरुषों ने बहुत कम खाई होगी। पश्चिम की स्त्रियाँ यदि पुरुषों के साथ पशु बनने की कोशिश करेंगी तो उन्हें भारतीय स्त्रियों से कुछ भी शिक्षा नहीं मिलेगी। यूरोपियन स्त्रियों को अपने पति और पुत्रों को अन्य मनुष्य की हत्या के लिए भेजना, और उनके पराक्रम के लिए अभिनन्दना देना आदि सब अब रोक देना होगा।"

इसके बाद, हमेशा की तरह गांधीजी ने श्रोताओं को प्रश्न पूछने का समय दिया। उनमें से कुछ यहाँ दिये हैं।

प्र०—'रेडक्रास सोसायटी के बारे में आपके क्या विचार हैं?'

उ०—'रेडक्रासवालों को युद्ध और युद्ध में लोगों को आराम देने का विचार छोड़ देना चाहिए। और युद्ध के बिना ही लोगों की सेवा-शुश्रूषा का विचार करना चाहिए। युद्ध के लिए यदि हमारी इतनी हिम्मत, इतनी इज्ज़त और इतना चमत्कार न होता तो हम लोग बहुत कुछ कर गये होते! दुनिया में करोड़ों लोग अपने विषय-विकारों की क़ैद में पड़े हैं और लाखों घर तहस-नहस हो गये हैं। इसलिए

आगामी कल का अहिंसक संघ यदि सेवा का काम ले लें तो उसके लिए इस दुनिया में बहुत काम पड़ा हुआ है। मैं चाहता हूँ कि स्विट्ज़रलैण्ड इस सेवामार्ग में औरों का नेतृत्व करे।'

प्र०--'हिन्दुस्तान ब्रिटेन के शासन से मुक्ति पाकर यदि युद्ध में शामिल हो तो उसका क्या होगा ?'

उ०--'उसने यदि अहिंसक उपायों से स्वतन्त्रता प्राप्त की, तो वह युद्ध में शामिल हो ही नहीं सकता।'

प्र०—'अध्यापक आइन्स्टीन यहाँ आकर रहेंगे, पर वे अब अमेरिका चले गये हैं। आइन्स्टीन ने लोगों से विनती की थी। वे अपनी सैनिक अवधियों को पूरा करने की अपेक्षा जेल जायँ तो अधिक अच्छा है, इसके बारे में आपका क्या विचार है ? उन्होंने कहा था,—'दुनिया के दो प्रतिशत लोंग भी यदि मेरी विनती का पालन करें तो दुनिया से सैनिकवादी सत्ता का नाश हो जायगा'।'

उ०—'लोग अध्यापक आइन्स्टीन की विनती पर अमल करें तो मुझे बहुत ही खुशी हो। आइन्स्टीन जैसे महापुरुष के बारे में यदि मुझे कुछ कहने को कहा जाय तो मैं यहीं कहूँगा, कि उन्होंने अपने ये वाक्य मुझ से चुरा लिये हैं। परन्तु जब सरकार की ओर से सैनिक नौकरियों के फ़रमान आने के बाद यदि आप लोग उनसे इन्कार करेंगे तो यह शुरूआत देर की शुरूआत होगी। सेना में नौकरी करनेवाले मज़बूत और सशक्त शरीरवाले एक मनुष्य के पीछे घरों में हजारों आदमी होते हैं। ये लोग भी युद्ध के लिए उतने ही गुनाहगार हैं, जितना कि युद्ध में जूझनेवाला सैनिक। राज्य तुम्हें जो सहूलियतें देता है उनसे इन्कार कर तुम्हें असहयोग करना चाहिए। भारत में हमने देखा कि सरकार सड़कें बनाती है, स्कूल चलाती है, रेल दौड़ाती है, डाकखाने खोलती है ; अँग्रेज़ों के आने के साथ-साथ पादरी लोग वहाँ आये और उन्होंने अस्पताल खोले और आज ये सारे काम ब्रिटिश सरकार अपनी बन्दूक की नोक से चला रही है। महलों की-सी बड़ी-बड़ी अदालतें बाँधी गईं, पर इनका सारा खर्च तो हमें ही देना पड़ा न। राज जो सुख सुविधाएँ देता हो, उसे हमें त्याग ही देना चाहिए। उनके स्कूलों से निकल जाना चाहिए।

अपने झगड़े उन न्यायालयों में ले जाकर उनकी महत्ता नहीं बढ़ानी चाहिए। हमें पंचायती अदालतों का निर्णय मान्य करना चाहिए। हमें सरकार की ओर से जो मान-सम्मान या ख़िताब मिले हों, उन्हें त्याग देना चाहिए। इन सहूलियतों का लाभ लेकर फिर सरकार को महसूल न भरकर उसके साथ असहयोग करना गुण्डों का काम है। इन सहूलियतों और मान-सम्मान का त्याग तो तुम्हें करना ही चाहिए। हमें अपने आन्दोलन की इमारत रचते-रचते दस वर्ष हो गये। सन् १९२० में हमने अपनी सहूलियतों को छोड़ना शुरू किया, परन्तु महसूल न भरने की बात हमने सन् १९३० से पहले नहीं शुरू की थी। यहाँ एक और बात का भी विचार करना होता है। वह यह कि मैं दक्षिण-अफ्रिका का भारत द्वारा शोषण भी नहीं होने देना चाहता। आप लोगों के राज तो अफ्रिका, चीन और भारत के शोषण के आधार पर रचित हैं। कभी भी यदि भारत दूसरे देश का शोषण करने बैठेगा, तो मुझे वहाँ से जलावतन होना पड़ेगा। पर मैं कहाँ जा सकता हूँ, सिवा इसके कि समुद्र में डूब मरूँ। इस प्रकार मैं अहिंसा का प्रयोग अपनी स्वार्थ-बुद्धि से कह रहा हूँ; क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि मुझ पर आत्म-हत्या करने की नौबत आये।'

प्र०—'पूँजीवादी जब मज़दूरों पर हिंसा की बौछार कर रहे हों, तब मज़दूरों को हिंसा के बिना न्याय कैसे मिल सकता है?'

उ०—'प्रहार के सामने प्रहार यह पुराना और जंगली तरीक़ा है। इन जंगली नियमों से छुटकारा पाने के लिए मैं मनुजोचित परीक्षण कर रहा हूँ। मैं अहमदाबाद मज़दूर-संघ का मुख्य सलाहकार माना जाता हूँ। इसी मज़दूर महाजन के द्वारा हम लोग मज़दूर और पूँजीपति के बीच के सवालों का हल अहिंसा द्वारा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसीलिए मेरा जवाब अनुभव-सिद्ध है। मज़दूरों में यदि पूर्ण संगठन और आत्म-बलिदान की भावना हो तो वे हमेशा न्याय प्राप्त कर सकते हैं।'

प्र०—'जिनेवा के एक पत्र में आपका इस प्रकार का वक्तव्य आया है,—"आम जनता यदि आज के अहिंसक कार्यक्रम को न अपनाये, तो उसे ख़ून-ख़राबी का रास्ता लेना पड़ेगा।" क्या आपने ऐसा कहा था?'

उ०—'कभी नहीं। और यह मैं कह दूँ कि अहिंसा केवल व्यवहार-नीति हो

नहीं है, अपितु वह तो शाश्वत जीवन-धर्म है। मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे किसी भी हिंसात्मक कार्य में प्रवृत्त होने से पहले वह मौत दे दे।'

प्र०—'आप राष्ट्र-संघ के बारे में क्या कहते हैं?'

उ०—'उससे लोग आशा तो यही करते हैं कि वह ऐसा चमत्कार करे जिससे शस्त्र-युद्ध खत्म हो जाय और जब राष्ट्र-राष्ट्र के बीच कलह हो तब वह मध्यस्थ का काम करे। परन्तु अपने निर्णयों के पालन करने का जो बल होना चाहिए, वह उसके पास नहीं है। उसे अमुक राष्ट्रों के सद्भाव पर ही आधारित रहना पड़ता है। हमने जो उपाय लिये हैं, उनमें से उसे आवश्यक ताक़त मिल सकती है।'

प्र०—'स्विट्ज़रलैण्ड तो एक छोटा, तटस्थ और अनाक्रमणकारी देश है। इसे शस्त्र-संन्यास लेने की बात क्यों कह रहे हैं?'

उ०—'इसलिए कि आपके तटस्थ देश की भूमि पर खड़ा होकर मैं यूरोप के सभी राष्ट्रों के साथ बातचीत कर रहा हूँ। दूसरी बात, स्विट्ज़रलैण्ड तटस्थ है और वह किसी पर आक्रमण नहीं करना चाहता। इसीलिए उसे सैनिकवाद की आवश्यकता नहीं है। तुम दुनिया के सभी लोगों को आकर्षित करते हो; और तुम इस पुण्य भूमि में रहते हो; इसीलिए तुम सारी दुनिया को शस्त्र-संन्यास का उपदेश भी दे सकते हो। इसके अलावा यदि तुम लोग बिना शस्त्र के अपना काम चला लो तो यह तुम्हारे लिए कुछ कम महत्त्व की बात है?'

प्र०—'हमारे देश में जो सैनिक तालीम की पवित्र प्रणाली है, उसके प्रति आप आँख क्यों मूँद लेते हैं? हमारी सरहद पर गत महायुद्ध में स्विस-सेना पड़ी हुई थी; इसीलिए हम उस महायुद्ध की विभीषिका से बच सके, यह आप नहीं जानते?

उ०—इस प्रश्न के पीछे दुहरा अज्ञान छिपा हुआ है। प्रश्नकर्ता यह मान बैठे हैं कि सैनिक के कामों के सिवा आत्म-बलिदान हो ही नहीं सकता। तो मैं यह कहता हूँ कि अहिंसा सैनिक के काम से भी अधिक बलवान है। अहिंसा की तालीम फ़ौज़ी-तालीम से ज़्यादा कठिन है। आपमें सहन-शक्ति होनी चाहिए और मृत्यु-भय छूट जाना चाहिए। इसमें बड़ी सख़्त मेहनत है। इसमें सुख की सेज पर नहीं सोना है। इसमें आप अपने घरबार की रक्षा की जवाबदारी से मुक्त नहीं हो

सकते। इस कर्तव्य में तो स्त्री और बच्चे भी भाग लेंगे। दूसरों के लिए प्राण न्यौछावर करने के उपदेश को ग्रहण करने में तुम्हारा काम सरल हो जाता है।

प्र०—ईश्वर के प्रति जताया गया प्रेम बड़ा है या मनुष्य के प्रति बताया गया ?

उ०—दोनों एक ही हैं। इन दोनों के व यदि संघर्ष हो तो उससे यह समझना चाहिए कि मनुष्य के अन्तःकरण में कुछ खामी है और उसे अधिक अन्तर्मुख होना चाहिए।

प्र०—आप अपने आन्दोलन को ईश्वर की प्रेरणा पर क्यों नहीं छोड़ देना चाहते ?

उ०—ओ हो ! प्रश्नकर्ता अन्दोलन का अभ्यास किया हुआ नहीं मालूम होता। यह आन्दोलन कभी भी ईश्वर की प्रेरणा के बाहर नहीं रहा। यह प्रेरणा न हो तो ऐसा विश्व-व्यापी आन्दोलन चलाने में कम-से-कम मैं तो अपने को नालायक़ ही समझता हूँ। इस आन्दोलन ने जितनी भी सफलताएँ प्राप्त की हैं, उनमें से एक के लिए भो कभी मैंने यह नहीं कहा कि यह मेरे कारण हुई है और न इस तरह का कभी दावा ही किया है। परन्तु इनमें जब कभी कोई कमी हुई है तो मैंने हमेशा यही कहा है कि यह सब मेरी कमज़ोरियों का फल है, और इसका ज़िम्मेदार मैं हूँ। क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि मैं तो ईश्वर के हाथ का एक बहुत निर्बल साधन-मात्र हूँ। मैं आन्दोलन की खोज में कभी नहीं निकला, यह तो मुझे ईश्वर की तरफ़ से स्वयं ही मिला, ऐसा मैं मानता हूँ। ईश्वर पर अविचल श्रद्धा न हो तो ऐसे विशाल आन्दोलन का नेतृत्व हो ही नहीं सकता।

इटली में स्वागत

(१३

स्विट्ज़रलैण्ड में हम लोग जहाँ-जहाँ घूमे वहाँ-वहाँ एक झमझमाता, चमकदार और नया तीसरे दर्जे का डब्बा हमारे उपयोग के लिए हमें मिला हुआ था। अब इटली की सरहद आने लगी, इसलिए हमारे साथ गाड़ी में स्विस लोग बैठे थे। वे अपनी अपनी अटकल लगाने लगे कि हमारी सारी मण्डली को पहले दर्जे के डिब्बे में मुफ्त घुमाने की तत्परता, जो इटालियन सरकार ने बताई थी, वह पूरी होगी कि नहीं ?

"क्यों पूरी न होगी ? जब उन्होंने स्वयं कहा है कि हम आपको ऐसी सुविधा देंगे।" इतना छोटा-सा बहुत ही उपयुक्त प्रश्न पूछकर गांधीजी बातचीत में भाग लेना बन्द कर देते हैं और जो स्विस फासिस्ट-विरोधी थे, वे तरह-तरह की अटकलें लगाकर कहने लगे कि इटली की सीमा पर ज़रूर झगड़ा होगा।

गांधीजी पूछते हैं,—"यह रेलवे राज्य की अपनी है ?" स्विस मित्र रेलवे-सम्बन्धी एक बात उन्हें बताते हैं। एक रेलवे कुछ फ्रेंचों की व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। उसे दुर्घटनाओं के बदले में हर वर्ष भारी रकमें देनी पड़ती थीं। इस बात की जाँच की गई। जाँच में निष्णातों ने कहा कि गाड़ियों में गैस की बत्तियों की जगह बिजली की बत्तियाँ लगाई जायँ तो बहुत-कुछ दुर्घटनाएँ कम हो सकती हैं। रेलवे के डायरेक्टरों की मण्डली एकत्र हुई; निष्णातों की बातें सुनी गईं; उन्होंने भी कुछ बातें कहीं और आखिर में सवाल पूछा; "दोनों में ज्यादा खर्च किसमें होता है—बिजली की बत्ती लगाने में या दुर्घटनाओं की कीमत देने में ?" दोनों की तुलना कर जवाब दिया गया—"बिजली की बत्ती लगाने में।" बस, खत्म, निर्णय हो गया। अधिक विचार करने की अपेक्षा, जो स्थिति मौजूद थी, उसे ही जारी रखा गया।

गाड़ी के दोनों ओर सुन्दर दृश्य हैं, इसलिए बातें थोड़ी-थोड़ी और देर-देर में होती हैं। एक आदमी आकर गांधीजी से कहता है कि मैं कुदरती मौत से मरी हुई गायों के चमड़े से चप्पल बनाने का कारखाना खोलने जा रहा हूँ। आत्मरक्षा के लिए किसी जानवर की हत्या की जा सकती है कि नहीं, इस प्रश्न की चर्चा शुरू होती है। गांधीजी कहते हैं,—"मैं तो किसी भी प्राणी की हत्या करने की अपेक्षा अपनी जान देना अधिक पसन्द करता हूँ।" "जीवमात्र अवध्य है" इस सिद्धान्त का वे फिर प्रतिपादन करते हैं।

ऐसा करने में क्या बुद्धिमत्ता है? साँप की ज़िन्दगी क्या मनुष्य की ज़िन्दगी जितनी ही क़ीमती है? तो भी इतना तो स्वीकार ही करना होगा कि जो लोग छोटे-से-छोटे प्राणी में भी ईश्वर का दर्शन करते हैं, उन्हें ये प्राणी नुकसान नहीं पहुँचाते। ज़हरी साँप गांधीजी के पास से गुज़र चुका है। साबरमती में एक समय साँप उनके शरीर पर चढ़ गया था; परन्तु वे ज़रा भी अस्वस्थ नहीं हुए और साँप जैसे चढ़ा था वैसे ही उतर गया। उनका कहना है कि ऐसे जीवों का हमला भय के कारण होता है, फिर वह तुम्हारा भय हो या उस प्राणी का। परन्तु जब अनजाने ही साँप को डराते हैं या किसी इरादे के बग़ैर ही हम जब उसे चोट पहुँचाते हैं तब वह काटेगा या नहीं? और यदि काटा तो मौत का दरवाजा खुला ही है न! हम लोग इसी चीज़ को गांधीजी के सामने रखते हैं।

गांधीजी,—"ऐसा बहुत ही कम होता है। मोटर की दुर्घटना में मरने के भय की अपेक्षा इसमें ज़्यादा डर नहीं है।"

मिलान स्टेशन पर हम लोग स्विस रेलगाड़ी में से उतरकर इटालियन रेलगाड़ी में बैठते हैं, यह काम बहुत ही दौड़-धूप और ठाट-बाट से हुआ। रात अधिक होने पर भी एक जन-समूह शोर मचाता है, हर्षनाद करता है और हमारी हरेक प्रवृत्ति को ध्यान से देखता है। गांधीजी पत्रकारों से मिलना नहीं चाहते थे, इसलिए वे लोग अब हमारे संघ के अन्य सदस्यों से मित्रता करने की कोशिश करने लगे। मुझे भूल से मिसेज़ नायडू समझ लिया जाता है। और मैं जब अन्य सभी साथियों से प्लैटफ़ॉर्म पर अलग हुई, उस समय रायटर के प्रतिनिधि को ऐसा लगा कि उसे

मुझसे कुछ मसाला मिलेगा। इसलिए जब हमारा ख़ास डिब्बा पहली जगह से हटाया गया तब वह मेरा हाथ पकड़ता है, और रेलवे लाइनों को पार कराता हुआ मुझे उस जगह घसीट ले गया, जहाँ अब हमारा डिब्बा खड़ा किया गया था। वह बहुत ही .ख़ुशी से कहने लगा कि रोम में मुझे उसकी एक पत्र-प्रतिनिधि युवती-मित्र मिलेगी, जिससे मिलकर मुझे बहुत ही .ख़ुशी होगी। परन्तु मेरा जी तो इस समय एक कप कॉफ़ी पीने के लिए तरस रहा था, और यह आदमी इस विषय में बिलकुल रूखा-सूखा नज़र आता है। यह मुझे यदि किसी उपाहार-गृह में ले जाकर कोई भी गरम पेय पिलावे तो यह जो-कुछ पूछे, मैं बताने को तैयार हूँ। परन्तु इसे तो गाड़ी के आस-पास घूमना ही पसन्द है। थोड़ी देर में तो हम लोग चल पड़ते हैं, और वह बिना किसी खबर के ही रह जाता है।

अब हमें आधा भोजन मिल चुका है। हमें यह मुसाफ़िरी इतनी सुख-सुविधा-वाली लगती है कि नींद बहुत अच्छी आ जाती है और हम लोगों में से बहुत-से तीन बजे की प्रार्थना में हाज़िर नहीं हो पाते। परन्तु मैं जल्दी उठ जाती हूँ, मुँह धोकर कपड़े बदलती हूँ और खिड़कियों में से विशाल, सपाट मैदानोंवाले देश पर नज़र डालती हूँ। रोम-प्रवेश की तैयारी की दृष्टि से यह मुल्क बहुत अच्छा लगता है। तीस वर्ष पहले मैं इसी रास्ते पर रात की गाड़ी से रोम आई थी। उस समय मैं स्कूल में पढ़ती थी। और परदेश की मुसाफ़िरी में पहिली ही बार निकली थी। आज बहुत ही सबेरे प्रभात-काल के शीतल प्रकाश में फिर बाहर नज़र फेंकती हूँ, और मैं इस मुल्क में किसी तरह का कोई ख़ास परिवर्तन नहीं पाती। विशाल, सपाट क्षितिज के सामने एक क़ब्रस्तान नज़र आता है, उसमें हरएक क़ब्र पर एक छोटा दिया जल रहा है।

आख़िर में सीवीटा वेछिया आता है। यह नाम सुनकर आज भी रोमांच हो आता है, पर इसके स्मरण से मेरे मन में कुछ नये ही विचार उठते हैं। काउन्ट टॉलस्टॉय की सबसे बड़ी लड़की अपनी दूसरी शादी के बाद यहीं कहीं रहती हैं। उनके पति सिन्योर आल बर्टिनी इटली के एक मुख्य अखबार के मालिक हैं और उन्होंने एक पुराने महल की मरम्मत कराकर वहीं अपनी रहने की जगह बना ली है।

सुबह के आठ बजे। रोम में रोम्याँ रोलाँ के एक पुराने मित्र जनरल मारिस हम लोगों से मिलनेवाले हैं। पर हमारी गाड़ी वक्त से पहले पहुँच जाती है, इसलिए हम अपने यजमान की राह देखते हुए गांधीजी के डिब्बे में ही बैठे रहते हैं।

सिनेमावाले बड़बड़ा रहे हैं, अखबारवाले स्पर्द्धा कर रहे हैं, लोग हर्षनाद कर रहे हैं और गांधीजी धीमे-धीमे मुस्करा रहे हैं। वह पत्र-प्रतिनिधि युवती आकर मेरे पास बैठ जाती है। उसने सुन्दर कपड़े पहने हैं, और मुँह पर अद्भुत हास्य है, मानो इस हमारे मित्र-वृन्द की वह पुरानी सदस्या हो। हम लोग देर से उसीकी राह देख रहे थे। पर उसे जब यह मालूम हुआ कि गांधीजी जब तक इटली में हैं, तब तक अखबारवालों से नहीं मिलेंगे, तब वह चली गई।

[क्या इसी का बदला लेने के लिए इन अखबार-नवीसों ने लन्दन में यह हानिकारक वक्तव्य भेज दिया था कि गांधीजी ने उन्हें मुलाक़ात दी और कहा "मैं भारत में इंग्लैंड के सामने आन्दोलन खड़ा करने के लिए जा रहा हूँ; और इस बार ब्रिटेन की दिक्क़तों को बढ़ाने में बहिष्कार प्रबल साधन होगा।]

हमारी मुसाफ़िरी में अनेक फासिस्ट अफ़सर सादी पोशाक में हमारी देख-रेख कर रहे थे, पर अब हमें सरकार की ओर से आमन्त्रण दिया जा रहा था। शिक्षा-विभाग के एक बड़े अफ़सर से गांधीजी का परिचय कराया जाता है। ऐसे जवान और जोशीले युवक को इतने बड़े ओहदे पर देखकर चित्त अत्यन्त प्रसन्न होता है।

इतने में हलचल होती है। जनरल मारिस आ गये हैं। वे अपने तीन मेहमानों को अपने घर ले जाते हैं। हम बाक़ी के लोग शहर के मध्य-भाग के एक होटल में ठहरे।

हमारा कार्यक्रम शहर के दृश्यों को देखना था। साँझ को छह बजे हम सबको जनरल मारिस के घर इकट्ठा होना था। गांधीजी पोप तथा मुसोलिनी दोनों से मिलना चाहते हैं; परन्तु दोनों में से एक भी मुलाक़ात अभी तक निश्चित नहीं थी।

साँझ को छह बजे हम लोग जनरल माँरिस के बँगले पर पहुँचते हैं। दीवान-खाने के किनारे पर आग के पास बैठे-बैठे गांधीजी कात रहे थे; और हम लोग प्रार्थना के समय तक दिन-भर में हुए अपने-अपने अनुभवों का आदान-प्रदान कर

रहे थे। पोप न मिल सके इसका गांधीजी को खेद रहा। परन्तु मुसोलिनी की मुलाक़ात में उन्हें खूब आनन्द आया। मीरा बहन और महादेवभाई उनके साथ गये थे। मुसोलिनी के मेहमानों को उस विशाल हाल में कितना चलना पड़ता है—बहुतों को तो यह अनुभव कष्टप्रद लगता था—और इतना चलने के बाद ही हाल के दूसरे किनारे पर जहाँ विशाल मेज़ के सामने बड़े ठाठ से मुसोलिनी बैठता था, वहाँ पहुँचा जा सकता था। इन सब बातों को देखकर इन्हें खूब मजा आया। इन मेहमानों का स्वागत करने के लिए तो मुसोलिनी अपना गौरवपूर्ण स्थान छोड़कर हाल के आधे रास्ते तक आये थे, और आधे घंटे बाद जब मुलाक़ात पूरी हुई, तब उन्हें विदा देने के लिए भी दरवाज़े तक आये थे।

वेटिकन चर्च की गैलरियों को गांधीजी के लिए खास तौर से खोला गया था। उनके बारे में गांधीजी ने उत्साह-पूर्वक बातचीत की। उसमें जो कला-संग्रह है, उसे देखने में तो गांधीजी को बहुत ही आनन्द आया। चर्च की लम्बी प्रतिध्वनियों से गूंजती चालों में एक गांधीजी अकेले-अकेले फिरे। इनमें एक मन्दिर को देखकर तो वे आदर और आश्चर्य की भावनाओं से परिपूरित हो गये। वे बोले,—"वहाँ मैंने ईसामसीह की एक मूर्ति देखी। उसे देखते-देखते मेरा मन अघाया ही नहीं। उसे छोड़कर आना मेरे लिए मुश्किल हो गया। देखते-देखते मेरी आँखों में आँसू आ गये।"

छह बज गये। प्रार्थना का समय हो गया। बहुत-से मुलाक़ाती आकर दर्शन कर गये हैं, तो भी कुछ लोग प्रार्थना के लिए दूसरे कमरे में बैठे हुए थे। कुछ निराश पत्रकार जिन्हें अन्दर आने से रोका गया था, वे भी यहीं बैठे हुए थे। उन्हें प्रार्थना में आने की तो मनाही नहीं थी; इसलिए वह विशाल कमरा लोगों से ठसाठस भर गया है। बत्ती बुझाई गई और जलती लकड़ी के मन्द प्रकाश में देवदास ने प्रार्थना शुरू की और लोग उसका साथ देते रहे।

प्रार्थना के अन्त में गांधीजी शान्त, स्वस्थ और आवेश से रहित आवाज़ से बोले,—"अब कोई बत्ती जलायेगा?"

मुलाक़ाती चले जाते हैं। और हम छह लोगों की मण्डली भोजन करने बैठी।

भोजन का कमरा मोहक था। मेज बड़ी है, तो भी उसने कमरे का एक ही कोना घेर रखा है। जो बूढ़ा नौकर हमें भोजन परोस रहा था, वह जनरल मारिस के साथ ज़िंदगी-भर से था।

दूसरे दिन हमने आकर देखा कि गांधीजी अभी शहर से घूमकर वापस नहीं आये हैं। उन्हें क्या-क्या देखना चाहिए, इस विषय में हम सब लोगों की अलग-अलग कल्पना थी और हम सब लोगों ने इस बारे में उन्हें आग्रहपूर्वक सलाह भी दी थी। हमारे एक रोमन केथलिक मित्र ने उन्हें सेन्ट पीटर का चर्च देखने का आग्रह किया था; और मैंने 'फोरम' देखने का। मुसोलिनी ने अपने एक खास मनुष्य के साथ गांधीजी को क्या-क्या देखना चाहिए, इस विषय की एक टाइप की हुई लिस्ट भेजी थी। इसमें नये-नये ढंग के अस्पताल, औषधालय, घरों की योजनाओं और पाठशालाओं आदि के भी नाम थे। परन्तु गांधीजी को तो अपने बारे में पूरे-पूरे ख्याल थे। डा० माण्टेसरी से उनकी लन्दन में मुलाक़ात हुई थी। इस समय उनके बाल-मन्दिर की मुलाक़ात लेकर उन्होंने अपनी जान-पहचान फिर ताज़ी की।

दोपहर का भोजन खत्म होते ही मुलाकातियों का ताँता बँध गया। गांधीजी कातते जाते हैं और बातें करते जाते हैं। मुझे सबसे अधिक दिलचस्पी टालस्टाय की सबसे बड़ी लड़की सिन्योर अल बर्टिनी के विषय में है। वे वयोवृद्ध, व्यवहार-कुशल, मज़बूत अंगोंवाली और प्रेमी घरेलू मुखमुद्रावाली स्त्री हैं। वे प्रास्ताविक बातों में समय नष्ट नहीं करतीं, वे कुर्सी खींचकर बिलकुल गांधीजी के चर्खे के पास आ जाती हैं और कहने लगती हैं,—"मि० गांधी, आपसे मिलकर मुझे वास्तव में बहुत आनन्द हो रहा है।"

"और मुझे आपसे मिलकर।" गांधीजी की हँसती हुई आँखें उनके फौलादी चश्मे में से चमकती हैं।

"यह तो आप जानते ही हैं कि मेरे पित आपके बारे में बहुत विचार करते थे।"

"उनके पत्रों को मैं बहुत ही क़ीमती समझता हूँ। वे पत्र उनकी तरफ़ से आपने लिखे थे कि आपकी बहन ने?"

"हम सभी लड़कियाँ, उन्हें काम में मदद करती थीं।"

बातचीत अधिक अपनेपन की ओर झुकने लगी। उसमें से कुछ एक वाक्य मुझे याद रह गये हैं।

"मेरे पिता कहा करते थे कि अगर मैं किसी को नहीं समझ सका तो टाल-स्टायवादियों को। वे नहीं चाहते थे कि लोग उनके अनुयायी बनें; लोग अहिंसा का पालन करें यही उनकी इच्छा थी। यही एक मात्र रास्ता है...ज़मीन हमारी अपनी थी। हमें वह बहुत अच्छी लगती थी और उस पर मेहनत-मज़दूरी करके गुज़ारा करनेवाले लोग भी हमें अच्छे लगते थे...आपका और उनका कार्यक्रम इतना ज़्यादा व्यावहारिक होने पर भी और इसी कारण से, आप दोनों को स्वप्नद्रष्टा, पागल, और बेवकूफ़ कहा जाता है, यह विचित्र बात है!...अँग्रेज़ आपको कैसे लगे, मि० गांधी?" प्रश्न करते-करते वे आगे झुकती हैं, गांधीजी को टकटकी लगाये देख रही हैं और उनका जवाब सुनने के लिये बहुत ही आतुर रहती हैं।

गांधीजी,—"मैंने वहाँ ख़ूब मज़े में अपना समय व्यतीत किया। मैं बहुत अच्छे-अच्छे लोगों से मिला।"

"ओहो!" सिन्योरा बोल उठीं, मानो उन्हें गहरा सन्तोष हुआ हो और कुर्सी पर अच्छी तरह बैठ गईं। "मुझे बहुत ही ख़ुशी है, मुझे यही उम्मीद थी। मुझे अँग्रेज़ प्रामाणिक और निष्पक्ष मालूम होते हैं।"

गांधीजी एक क्षण रुकते हैं और अपनी सम्मति देते हैं,—"हाँ, मैं भी मानता हूँ कि वे लोग प्रामाणिक और निष्पक्ष हैं।"

"और आप जानते हैं, ये दो गुण इनमें किस तरह आ पाये हैं? यह उनकी मन की स्वतंत्रता की बदौलत!"

"यह तो स्पष्ट ही है कि इन लोगों में मन की स्वतंत्रता बहुत है।"

मैं आग के पास बैठी हूँ और अब दीवार का सहारा लेकर बैठना चाहती हूँ। मेरा ब्रिटिश हृदय, जो इस समय एक ही है, गर्व से फूला नहीं समा रहा है, इतना कि मैं उसे इन लोगों को देखने देना नहीं चाहती। नहीं तो वे लोग बात करना बन्द कर देंगे। क्योंकि गांधीजी इस प्रकार सरलता से किसी की स्तुति या प्रशंसा नहीं

करते। परन्तु गांधीजी तो उससे भी आगे बढ़ते हैं, और कहते हैं,—"लंकाशायर तथा लन्दन के पूर्वी भाग के मज़दूर मुझे बात को जल्दी समझनेवाले और अक़्लमन्द मालूम पड़े। वस्तुतः मैं समझता हूँ कि इण्डिया आफ़िस के अधिकारियों की अपेक्षा इन मज़दूरों के मन भारतीयों की आकांक्षाओं को अधिक अच्छी तरह समझ सके थे। बड़े लोग अकसर कान में ही बात रख लेते हैं, उस पर ध्यान नहीं देते। परन्तु ग़रीब लोग सुनते और समझते हैं।

एकाएक खटका होता है। एक ऊँचा, चश्मेवाला, सीधा, भूरी पोशाक पहने जनरल आर्टुझी, जो अपने पुराने मित्र जनरल मारिस की जगह मेहमानों का आदर-सत्कार कर रहे थे, आकर गांधीजी के पास बैठ जाते हैं और बात करने लगते हैं। बादशाही कुटुम्ब के लोग आनेवाले हैं। राजा की छोटी राजकुमारी प्रिन्सेस मेरिया के लिए जगह खाली करने के लिए लोग कमरे में से उठने लगे। राजकुमारी आकर गांधीजी के पास बैठ जाती है, परन्तु भाषा के कारण, पहले बातचीत कठिनता से होती है। गांधीजी कात रहे हैं और दोनों एक-दूसरे के सामने देखकर हँसते हैं। राजकुमारी अपनी परिचारिका को टोकरा लाने के लिये भेजती हैं।

राजकुमारी,—"ये हिन्दुस्तान के अंजीर हैं। आप आज रात ब्रिंडिसी जा रहे हैं, आपके रास्ते के उपयोग के लिए मैं लाई हूँ।"

गांधीजी ख़ुश होते हैं और सुन्दरता से पैक किए हुए फलों को देखते हैं। और राजकुमारी का आभार मानते हैं। परन्तु थे तो सत्याग्रही, इसलिए बोले,—'ये अंजीर नहीं हैं।'

"हाँ, हाँ, हमारे यहाँ इसे ही हिन्दुस्तानी अंजीर कहते हैं।" राजकुमारी ने आग्रहपूर्वक कहा।

परन्तु किसी लावण्यवती युवती राजकुमारी के लिये तो सत्य का व्रत तोड़ा नहीं जा सकता।

गांधीजी,—"हम जिसे अंजीर कहते हैं वे ऐसे नहीं होते, पर ये अंजीर हों या न हों।" ये शब्द कहकर, उनमें जो सभी युवक-युवतियों के लिए एक सहज सहृदयता और समझ है उसी का भाव आँखों में लाकर, गांधीजी राजकुमारी की ओर देखकर

बोले,—"इनका नाम कुछ भी क्यों न हो, पर मुसाफ़िरी में तो ये बहुत ही मीठे लगेंगे। मैं आपका आभार मानता हूँ।"

काले कपड़ोंवाली परिचारिका बोली,—"ये फल रानी साहिबा ने आपके लिए स्वयं पैक किए हैं।"

गांधीजी,—"यह इनकी मेहरबानी है।"

थोड़ी देर बाद राजकुमारी उठती है, हाथ मिलाती है और कहती है,—"मैं जाती हूँ, भगवान् आपका भला करे।"

गांधीजी का फिर शहर में जाने का समय हो जाता है।

मुझे आज रोम जाने की ज़रा भी इच्छा नहीं। मुझे लिखने के लिए शान्ति चाहिए। मैं बगीचे में चक्कर लगाने निकल पड़ती हूँ। वहाँ जनरल आर्टुफी से भेंट होती है। हम लोग बात करते-करते दीवानखाने में वापस आ जाते हैं। वहाँ स्विस दूत और उनकी पत्नी बैठी हैं, उनके साथ मेरा परिचय कराया जाता है। हमारी विलनव की यात्रा के बारे में वे पूछते हैं, "हमें वहाँ ख़ूब आनन्द रहा।" गांधीजी सुबह पहाड़ पर घूमे थे; उसका और पीयर सेरेसोल का उन पर कैसा असर पड़ा, आदि बातें मैं उन्हें बता देती हूँ। परन्तु वे लोग पीयर को किसी और ही नज़र से देखते हैं। उनकी अन्तर्राष्ट्रीय सेवा-सेना जो लड़ाकू-सेना का स्थान ले सकती है, उसके स्थापन में जिसने अपनी सारी ज़िन्दगी लगा दी हो, उसकी क़ीमत गांधीजी के सिवा और कौन कर सकता है? इन देशों के सत्ताधीशों को उसकी क्या क़ीमत होगी? परन्तु तो भी ये लोग बहुत अच्छे हैं। हम लोग शस्त्र-संन्यास पर बात करने लगे।

"हम मानते हैं कि विलायत में पीयर सारे यूरोप को रास्ता बता रहे हैं।"

एक स्विस महिला बोलीं,—"पर हम स्विस लोगों को सबसे पहले शस्त्र-संन्यास नहीं लेना चाहिए।"

मैंने पूछा,—"तो किसे करना चाहिए?"

"ओहो! हमारा तो यक़ीन है कि यह काम सबसे पहले ब्रिटेन को करना चाहिए।"

इतने में वह पत्रकार युवती और उसका साथी हाँफते-हाँफते आ खड़े होते हैं।

परन्तु हम लोगों ने उन्हें रोका और कहा कि "गांधीजी पत्रकारों से नहीं मिलेंगे।" उन लोगों ने पूछा,—"हम प्रार्थना के बाद थोड़ी देर के लिए उनसे मिल लेंगे।" यही ठीक होगा।

प्रार्थना का समय होने आया। प्रार्थना के बाद तुरन्त ही गांधीजी का मौन शुरू होनेवाला था। और इसके बाद वे यूरोप की सीमा में जब तक हैं तब तक कुछ भी नहीं बोलेंगे। इसके बाद हम सब लोग विदा लेने वाले थे ही।

गांधीजी को विदा होते हुए ख़ुशी हो रही थी। वे जिस समय बो मुहल्ले में आये थे, उसे आज बारह हफ़्ते हो गये हैं। उनके आने से पहले जब उनके विषय में विचार करती थी तो मुझे ख़्याल होता था कि वे तो महान व्यक्ति हैं, सर्वथा प्रशंसा-पात्र हैं, बिलकुल निःस्वार्थ हैं, प्रभुपरायण हैं और प्रार्थना करने से पहले न तो एक भी क़दम रखते हैं और न किसी बात का निर्णय ही करते हैं। उन्होंने राजनीति में तो कम-से-कम नया तत्त्व दाखिल किया है। राजनीति और राजकार-भार के क्षेत्र में पवित्रता, और बिलकुल खुल्लमखुल्ला काम करने की नीति की जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है।

जब हम किसी के बारे में यह कहते हैं कि हम उसे पहचानते हैं, उससे पहले यह आवश्यक है कि हम पहले उसके घर के जीवन को देख लें, और उसके साथ रह भी लेना चाहिए। मैं गांधीजी के साथ बारह सप्ताह रही। मैंने उन्हें हरेक दशा और हरेक प्रसंग में देखा। इसके अलावा मैंने उन्हें अपनी मनोवृत्ति की दृष्टि से भी देखा। मैं किसी भी स्थिति में क्यों न होऊँ, मेरे मन में भले ही दूसरे विचार उठते हों, मैं थकी होऊँ, आनन्द में होऊँ या गंभीर ही क्यों न होऊँ—मुझे अपने मान्य अतिथि का विचार तो हमेशा करना ही पड़ता है।

मैंने उन्हें प्रतिदिन तड़के साढ़े पाँच बजे सरदी के अन्धेरे में देखा, मुस्लिम प्रतिनिधियों से बड़ी रात तक बातचीत कर मध्यरात्रि में उन्हें घर आते भी देखा। दोपहर में बालकों की टोलियों में घिरा हुआ देखा, एक भूतपूर्व प्रधान-मंत्री के दीवानखाने में आग के सामने घण्टों तक बैठे देखा। सेंट जेम्स महल, अमीर-उमरावों,

उनकी स्त्रियों, राजाओं और प्रधान-मण्डल के प्रधानों से घिरे हुए भी उन्हें देखा। वे हमेशा एकरस ही नज़र आते—शान्त, प्रसन्न, विनोदी, सहृदय, निःस्वार्थ और ईश्वर तथा मनुष्य के साथ एकता का अनुभव करते हुए।

मुझे जिनके प्रति आदर था, ऐसे एक महापुरुष की तरह ही मैंने उनका बो मुहल्ले में स्वागत किया था। एक मुहब्बती, आनन्दी और सर्वथा विश्वासपात्र मित्र के नाते मैंने उन्हें विदा दी।

बनावटी मुलाक़ात

(१४)

यूरोप के अपने प्रवासों में गांधीजी का अखबारनवीसों के प्रति जो व्यवहार था, उस पर मैंने खास ध्यान दिया था। मेरी कल्पना थी कि दूसरे राष्ट्र के अखबारवाले भारत की राष्ट्रभावना के प्रति सहानुभूति दिखाएँगे और ग्रेट ब्रिटेन की साम्राज्यशाही हुकूमत की कटु आलोचना करेंगे। इस टीका-टिप्पणी का जवाब देने की भी मेरी पूरी तैयारी थी। मैंने यह कहने का विचार किया था कि दूसरों का दोष निकालना सहज होता है, परन्तु यूरोप की किसी भी प्रजा के हाथ ख़ून से न रँगे हों ऐसी बात नहीं है। परन्तु मैंने देखा कि मुझे अपने देश के ऐसे बचाव की ज़रूरत ही नहीं है। प्रत्युत इसके मुक़ाबले में यूरोप के अखबार अनेक बार गांधीजी का विरोध करनेवाले, सामान्यतः झूठी खबरें छापनेवाले, और कितनी ही बार पूरी-पूरी हानि करनेवाले साबित हुए।

अखबारनवीसों और गांधीजी के बीच की बातचीत मैं बहुत दिलचस्पी से सुनती थी। वे जो वाक्य बोलते थे, उसका प्रत्येक शब्द ब्रिटेन और भारत के भावी सुनहरे सम्बन्ध की आशा से ओत-प्रोत होता था। यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था। अनेक बार अखबारवालों को खबरें मैं ही देती थी।

गांधीजी शनिवार की सुबह रोम पहुँचे और रविवार की रात को वहाँ से चल पड़े। उन्होंने ऐसा निश्चय किया था कि इन दो दिनों में छुट्टी मनायी जाय। अखबारवालों को मुलाक़ात देने से इन्कार किया गया था। शनिवार का दिन उन्होंने मुसोलिनी से मिलने और वेटीकन का चर्च देखने में बिताया। रविवार के दिन डा० माण्टेसरी से मिले और उनका बाल-मन्दिर देखा और अन्य कुछ देखने लायक जगहों को देखा। दोपहर के भोजन के लिए वे, मोन्टमेरियो, जहाँ हम लोग उस समय थे

और जहाँ वे ठहरे थे, आये। टालस्टाय की पुत्री, राजकुमारी तथा अन्य मुलाक़ातियों से मिले, इसके बाद मोटर में बैठकर फिर कुछ जगहों को देखने गये और चाय के समय वापस आ गये। बाद में उन्होंने हममें से प्रत्येक से विदा ली, क्योंकि प्रार्थना के बाद उनका चौबीस घण्टे का मौन था। मुलाक़ातियों की एक भीड़ उनकी राह देख रही थी, वह दीवानखाने में दाखिल हुई। प्रार्थना शुरू होने से पहले गांधीजी ने उन्हें सम्बोधित कर दो शब्द कहे। इसके बाद तो वे सोमवार की शाम को भूमध्य-सागर पर, जब उनका मौन खतम हुआ होगा, तभी बोले होंगे।

एक-दो दिन बाद जहाज़ के रेडियो पर हमें ख़बर मिली कि उन्होंने रोम में 'जियार्नेल-डी-इटालिया' नामक पत्र के प्रतिनिधि से मुलाक़ात की थी और कहा था,—

"गोलमेज़ परिषद् भारतीयों के लिए एक लम्बी और धीमी वेदना हो गई है, परन्तु इसके कारण ब्रिटिश अधिकारी भारतीय जनता और उनके नेताओं का जोश तो साफ़-साफ़ देख सके हैं और इंग्लैण्ड के सच्चे स्वार्थ ढक गये हैं। गांधीजी ने कहा कि वे इंग्लैण्ड के सामने अपना आन्दोलन शुरू करने के लिए वापस जा रहे हैं। और यह आन्दोलन सविनय अवज्ञा-भंग और ब्रिटिश माल का बहिष्कार होगा। वे समझते हैं कि चलनी-सिक्कों की क़ीमत घट जाने और बेकारी से ब्रिटेन की मुसीबतें इस समय बढ़ गई हैं और उन्हें इससे भी ज़्यादा तीव्र करने के लिए बहिष्कार ही एक प्रबल शस्त्र हो सकता है। सभी ब्रिटिश माल के लिए हिन्दुस्तानी बाज़ार बन्द हो जायगा और इससे ब्रिटेन की औद्योगिक प्रगति घट जायगी, बेकारी बढ़ेगी और पौंड की क़ीमत और भी नीचे गिर जायगी।

"आखिर में मि० गांधी ने यह अफ़सोस जाहिर किया कि यूरोप के बहुत कम देशों ने अभी तक भारतीय प्रश्नों में दिलचस्पी ली है। यह खेदजनक है, क्योंकि स्वतन्त्र भारत ही विदेशी माल के लिए अच्छा बाज़ार हो सकता है। और भारत यदि स्वतन्त्र होगा तो वह व्यापार और बौद्धिक विषयों का आदान-प्रदान करेगा।"

इस मुलाक़ात को सुनते ही गांधीजी के मित्र—तीन यूरोपियन और चार भारतीय—समझ गये कि यह मुलाक़ात बनावटी है। गांधीजी ने इन शब्दों की कठोरता देखकर और इस सफ़ेद झूठ का निराकरण करने के लिए एकदम लन्दन तार भेज

दिया और उसमें लिखा कि न तो मैंने ऐसी कोई मुलाक़ात ही दी है और न ऐसे अनुचित और कठोर शब्दों का प्रयोग ही किया है।

जहाज़ के एडन पहुँचते ही गांधीजी वहाँ के मुख्य अधिकारी से मिलने गये और इस अत्यन्त हानिकारक खबर को झूठ साबित करने के लिए सबसे प्रभावोत्पादक उपाय क्या हो सकता है, इस पर विचार-विनिमय किया। यह मुलाक़ात इतनी देर तक हुई कि वे जहाज़ पर ठीक समय पर पहुँच सकेंगे या नहीं, इसमें भी सन्देह होने लगा। परन्तु उन्होंने सर सेम्युअल होर तथा अन्य लोगों को जो तार भेजे उनसे उनका हृदय हलका हो गया था।

गोलमेज़ परिषद् से जो लाभ हुआ था, उसका असर बहुत-से लोगों के मन पर इस बनावटी मुलाक़ात से जाता रहा, ऐसा मुझे महसूस हो रहा था।

रवीन्द्रनाथ जब रोम गये थे, तब भी ऐसा ही हुआ था। वहाँ उनके नाम से एक बनावटी वक्तव्य प्रकाशित किया गया था; और उसकी प्रतिध्वनि बंगाल के एक दूरस्थ गाँव तक पहुँची थी। उस गाँव में एक इटालियन किरायेदार रहता था। उसके खाली कर जाने पर उसी घर में मैं रही थी। इस व्यक्ति को तुरन्त ही स्वदेश बुला लिया गया था, वह भी सिर्फ इसलिए कि कविवर के निवेदन से इटली का अपमान समझा गया था।

दैनिक अखबार में जब कोई गलत समाचार छप जाता है तो उसे फैलने के लिए दो दिन स्पष्ट और निर्विघ्न मिल जाते हैं; और फिर जब उसका प्रतिवाद निकलता है तब उसका कोई विशेष असर नहीं होता। झूठी खबरें अक्सर पाठकों के लिए ज़ायकेदार मसाला होती हैं, और वह एक से दूसरे के पास इतनी सरलता से जाती हैं कि उनके आगे प्रतिवाद की तो कोई बिसात ही नहीं। और वह उस झूठी खबर के मुकाबले नीरस लगता है। इसके अलावा वह प्रतिवाद एक सबसे विशिष्ट, पुरानी ओर प्रतिष्ठित पद्धति—यानी समाचार-पत्रों का समूह—पर सबसे बड़ी तोहमत भी तो होती है, और पाठक के मन पर असर करनेवाली जैसी चीज़ नहीं है।

मैं गांधीजी को बिदा कर ज्यों ही लन्दन वापस आई, मैंने देखा कि लोगों

के मन में गांधीजी के प्रति अब कटुता के भाव जागृत हो गये हैं। यह देखकर मुझे बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ। परन्तु जब किसी ने मेरे सामने इस मशहूर मुलाक़ात का रहस्य खोला तब मैं अपने देश-वासियों के व्यवहार में एकाएक परिवर्तन की लहर सरलता से देख सकी।

परिशिष्ट १

लन्दन की मुलाक़ात *

जोन हेन्स होम्स

आज सुबह मैं आप लोगों को अपने जीवन की एक निजी कथा सुनाना चाहता हूँ। मैं गांधीजी से मिला हूँ। मैंने उनसे हाथ मिलाया है और मैंने उनकी आँखों से आँख मिलाई है और उनकी आवाज़ भी सुनी है। बड़ी भारी आम सभा में बैठकर मैंने उनका भाषण सुना है। उनके चरण-कमलों के पास अकेले बैठकर मैंने उनसे अनेक विषयों पर महत्त्वपूर्ण बातें की हैं। ये सब बातें मुझ अकेले के सिवा और किसी के लिए महत्त्व की नहीं हैं। परन्तु मैंने आप लोगों के सामने उनके विषय में अनेक बातें की हैं, और यह महापुरुष—जिसे हम सब 'संसार का सर्वोत्तम पुरुष' पहचानने लगे हैं—उसकी प्रशंसा और प्रेम में आप लोगों ने मेरा इतना

---

* [सार्जेण्ट एवन्स और सार्जेण्ट रोजर्स अनेक पुरुषों के भेदों को अच्छी तरह जानते हैं। गांधीजी की सुख-सहूलियत के लिए उन्होंने हमेशा ख़्याल रखा—लेखिका]

इनके बारे में गांधीजी ने लिखा था,—'गुप्त पुलिस के जिन अधिकारियों को मेरी देख-रेख का काम सौंपा गया था, उनमें से दो जिनसे मेरा गाढ़ परिचय हो गया था, तो मेरे सच्चे मित्र और अच्छे अङ्ग-रक्षक साबित हुए। उनका काम मेरी हलचलों की गुप्त देख-रेख रखना हो, ऐसा मुझे कभी महसूस नहीं हुआ। न तो उनका कोई ऐसा व्यवहार ही था और न मैंने कभी इस बात को जानने की कोशिश ही की। अगर उनका उपर्युक्त हेतु होता तो न मुझे आश्चर्य होता, न दुःख। ऐसा मेरा अन्दाज़ है कि ये मेरी प्रवृत्तियों की देख-रेख करनेवाले नहीं थे। मेरे प्रति उनका

अधिक सहयोग दिया है कि मैं अपने इस अनुभव को जीवन की सबसे क़ीमती चीज़ समझूँगा। और अपने इस अनुभव के भावों को यदि मैं आपके सामने यथाशक्ति प्रकट न करूँ तो मैं समझता हूँ कि मैं अपने कर्तव्य से चूक गया हूँ। इसके अलावा इस अनुभव में एक विशाल अर्थ है। मैंने गांधीजी के जिस समय दर्शन किये उस समय उनकी कीर्ति और कार्य का मध्याह्न था और उस समय जो घटनाएँ घटित हो रही थीं; वे सिर्फ हम लोगों के लिए नहीं, अपितु सभी युगों के महत्त्व की थीं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं आप लोगों के सामने सिर्फ अपने ही मन पर पड़े हुए प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ; परन्तु आज इस महापुरुष का हिन्दुस्तान पर, बड़े भारी ब्रिटिश-साम्राज्य पर और सारे संसार पर जो असर हुआ, उसका वर्णन मैं आप लोगों के सामने कर रहा हूँ। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो मैं केवल एक व्यक्ति से नहीं मिला, अपितु एक अहिंसक युद्ध के, आन्दोलन के और महान क्रान्ति के संचालक से मिला।

प्रेम इतना अधिक था कि मुझे जब ज़रा-सी तकलीफ होती थी तब ये लोग जी-तोड़ मेहनत करते थे और मुझे आराम पहुँचाने में कोई कोर-कसर नहीं करते थे। मेरे साथियों को इनकी मदद बड़ी कारगर साबित हुई। सामान वग़ैरह की चिन्ता तो ये पुलिस के अफ़सर ही करते थे। मेरे अनुरोध करने पर इन्हें मेरे साथ ब्रिंडिसी तक आने की इजाज़त मिल गई थी। ये लोग जब हमसे अलग हुए तो उन्हें भी बहुत दुःख हुआ और हमें भी। मनुष्य-प्रेम के ऐसे अनुभवों के लिए मैं धरती के इस कोने से उस कोने तक घूम सकता हूँ।

जहाँ आत्म-शुद्धि की लड़ाई हो, जिसका आधार सत्य और अहिंसा हो, वहाँ ऐसे मनुष्य-प्रेम की वृद्धि ही होती है। इससे हमारे सत्याग्रह की शक्ति भी चौगुनी हो जाती है।'—'नवजीवन' ३-१-३२]

[ब्रिंडिसी से जब ये गुप्त-पुलिस के अफसर गांधीजी से विदा लेने लगे तब उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि यादगार के लिए मैं आप लोगों को कुछ देना चाहता हूँ। दोनों अफसरों ने घड़ी लेने की इच्छा ज़ाहिर की। गांधीजी ने बम्बई बन्दरगाह पर उतरते ही इङ्गलैंड में बनी हुई दो घड़ियाँ उन्हें भेज दीं—अनुवादक]

गांधीजी के लन्दन आने की बात मैंने जर्मनी में सुनी। इससे पहले ग्रीष्म ऋतु में मुझे उनका एक पत्र मिला था। उसमें उन्होंने अपनी आगामी यात्रा और लन्दन पहुँचते ही मुझे वहाँ उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की थी। परन्तु उनकी योजना खटाई में पड़ गई और उन्होंने घोषणा कर दी कि वे अब गोलमेज़ परिषद् में शामिल न होंगे। इसके बाद उनका वायसराय के साथ समाधान हुआ और उन्होंने लन्दन आने का निर्णय किया। गांधीजी आ रहे हैं, वे इस समय जहाज़ में बैठकर समुद्र में प्रवास कर रहे हैं, ऐसा सुनते ही मैंने अपनी अन्य सभी योजनाओं को छोड़ दिया और लन्दन की ओर रवाना हुआ। मैंने निश्चय किया था कि मैं महात्माजी के दरवाज़े पर धरना दूँगा, और जब तक दरवाज़ा खोलकर मुझे अन्दर न लिया जायगा तब तक मैं उठूँगा ही नहीं। मुझे ऐसी आशा तो कदापि नहीं थी कि उनके लन्दन में पैर धरते ही मुझे आदर-सत्कार करने का अवसर मिलेगा। परन्तु उस घटना की भी, नाटकों और विनोदी प्रसंगों की तरह एक स्वतंत्र कथा है। मैं १२ सितम्बर के दिन फोकस्टन बन्दरगाह पर जहाज का इन्तजार कर रहा था।

हवा इस ऋतु में इंग्लैण्ड में जैसी होती है वैसी ही थी—सर्दी थी, कुहरा था और कभी-कभी बीच-बीच में बारिश का सख़्त झोंका भी आ जाता था। हवा से समुद्र की लहरें खूब उछल रही थीं और बन्दरगाह पर खड़े हुए लोगों की हड्डियों को सर्दी से भेद रही थीं। मैंने अपनी ऐनक पर से बरसात का पानी पोंछ डाला और कुहरे के पार खुले समुद्र पर नज़र डाली। दूर क्षितिज से एक छोटा-सा सफ़ेद जहाज, जैसे कोई भूत सफ़ेद चादर ओढ़े आ रहा हो उस तरह, धीरे-धीरे आता नज़र आया। जहाज़ के बन्दरगाह पर आते ही सिर्फ एक व्यक्ति को—ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि को ही जहाज़ पर जाने की इजाज़त मिली। शेष हम सभी लोगों—गांधीजी के मित्रों, भारत से आये प्रतिनिधियों, केंटरबरी के डीन, अखबार के प्रतिनिधियों और फोटोग्राफरों को—बरसात में ही खड़ा रहना पड़ा। बन्दरगाह की दीवार के पीछे दर्शकों का समूह था। परन्तु यह इन्तज़ार थोड़ी देर का था। थोड़ी ही देर में हम जहाज़ पर पहुँचे, और मैं गांधीजी के केबिन में जाने की अपनी बारी की इन्तज़ार में खड़ा था। वहीं मैंने गांधीजी के पहले-पहल दर्शन

किये। वह अपनी बैठक पर पालथी मारकर बैठे थे और रेजीनाल्ड रेनल्ड्ज़ के सा
बहुत ज़्यादा बातचीत करने में मशगूल थे। यह अंग्रेज़ जवान क्वेकर भारत
गांधीजी के आश्रम में रहे हुए हैं, और दाण्डी-कूच प्रारंभ होने पर गांधीजी का प
वायसराय तक पहुँचाने के लिए मशहूर हो चुके हैं। गांधीजी के पैर खुले थे
उन्होंने शरीर पर गले तक एक खादी की शाल ओढ़ी थी। ऐसा मालूम हो रह
था कि वे कुछ ध्यान से सुन रहे थे। उनका सिर और कंधे इसीलिए झुके हुए थे
खुला, लम्बा, पतला और मजबूत हाथ शाल में से बाहर निकला और उन्होंने रेजी
नाल्ड के हाथ से एक कागज़ लिया। दोनों के बीच कुछ बातचीत हुई, थोड़े हं
और बातचीत पूरी हो गई।

अब मेरी बारी आई। मैं छोटे-से केबिन में घुसा। गांधीजी एकदम कूदक
उठे और बच्चों की-सी चपल और तेज़ चाल से मेरा स्वागत करने के लिए आ
बढ़े। उन्होंने अपने हाथ में मेरा हाथ लिया, यह पकड़ एक पहलवान-जैसी थी
मैंने उनकी आँखों में जो तेज देखा वह इतना तीक्ष्ण था कि उनकी ऐनक के शी
भी उस तेज को रोकने में असमर्थ थे। मुझे जिस आवाज़ से उन्होंने सम्बोधि
किया, वह जितनी बुलन्द थी उतनी ही सौम्य भी थी। हम थोड़ी देर तक सा
रहे। मेरे मन में घबराहट और भावुकता के आवेश थे; और उस समय क्या-क
बातें हुईं, इसका मुझे ज़रा भी ध्यान नहीं है। परन्तु इस मुलाक़ात में शब्दों का महत्त्
नहीं था, महत्त्व था भावनाओं का। जिस पुरुष की आत्मा आज से बरसों पह
आधी दुनिया के भागों और समुद्रों को पारकर, मेरे हृदय तक पहुँची थी, उसी पुरु
के सान्निध्य में मैं आज हूँ। और वह आत्मा इस सान्निध्य में मुझ पर ऐसा अस
डाल रही थी, जो कभी नहीं मिट सकता।

इसके बाद और भी अनेक प्रभाव मुझ पर पड़े। परन्तु यह सबसे पहला प्रभा
कैसा था? इस सवाल का जवाब देना सरल है। यह उनकी सुन्दरता का असर था
लोगों को गांधीजी के कुरूप होने का ख़्याल कैसे आता है? कुछ लोगों ने उन्हे
'वामन', 'मानव-कपि' आदि विशेषण कैसे दिये होंगे? यह सच है उनका शरीर औ
उनके अवयव कमज़ोर हैं, पर उनका तपस्वी-जीवन फालतू चर्बी पैदा नहीं हो

देता। इनका ढाँचा ऊँचा, उनकी छाती सीधी और क़द मध्यम है। मैंने ऐसे बहुत-से भारतीयों को देखा है जिनका चेहरा महात्मा गांधी के मुक़ाबले में ख़राब नज़र आता है। यह भी सच है कि उनके व्यक्तिगत विशिष्ट अङ्ग बहुत ही सुन्दर हैं। उनका सिर घुटा है, उनके कान बड़े-बड़े हैं, ओठ मोटे हैं और दाँत गिर गये हैं। परन्तु उनकी सफेद शाल के मुक़ाबले में उनका गेहुँआँ चेहरा बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ता है। उनकी आँखें अँधेरी रात के दीए की तरह चमकती हैं। और इन सबसे ज्यादा और ऊपर प्रभात काल की सृष्टि पर सूर्य के प्रकाश की तरह, उनका हास्य फैला हुआ है। हमारे मन पर इस पुरुष के शारीरिक दृश्य का प्रभाव नहीं, अपितु उनके आध्यात्मिक सान्निध्य का प्रभाव पड़ता है। हमें अनायास ही उनकी सादगी, सत्यनिष्ठा और निर्दोषिता का ख़याल आ जाता है। वे एक बच्चे की-सी स्वाभाविकता और स्वयंस्फूर्ति से हमारे समक्ष आते हैं और बातचीत करने लगते हैं। गांधीजी में अहंकार तो लेशमात्र भी नहीं है, संसार में उनकी काफ़ी प्रशसा होती है, उन पर स्तुतिवचनों की वृष्टि होती है, तो भी उनमें न तो बनावट है, न ढोंग है और न अभिमान ही है। उनके रहन-सहन, उनकी शारीरिक हलचलों और व्यवहारों से हम स्पष्ट समझ जाते हैं कि उनमें किसी तरह का छल-कपट नहीं है। हमें जो कुछ उनमें नज़र आता है, वह तो उनके अलौकिक व्यक्तित्व का ही प्रामाणिक और निर्भय आविर्भाव है। इसलिए हम यही सोचते हैं कि वे कैसे हैं, न कि कैसे नज़र आते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो उनका परम सत्य उनके देहरूपी अपूर्व वस्त्र में से साफ चमकता नज़र आता है। दरअसल गांधीजी की सुन्दरता इसीलिए है; क्योंकि सत्य ही सौन्दर्य है। जान कीट्स ने जो लिखा है, वह तो आपको याद ही होगा,—"सौन्दर्य ही सत्य है, और सत्य सौन्दर्य है; इतना ही आप जानते हैं और इतना ही जानने की आपको आवश्यकता है।"

थोड़ी देर बाद हम लोग जहाज़ से उतरे और लन्दन की ओर बढ़े। गांधीजी सरकारी मोटर में थे, साथ में उनकी रक्षा के लिए पुलिस भी थी। मैं गाड़ी में महात्माजी के लड़के देवदास, उनके मंत्री प्यारेलाल और उनकी परिचारिका और शिष्या मिस मेडेलीन स्लेड (मीरा बहन) के साथ बैठा।

हम लन्दन पहुँचे और तुरन्त ही कीचड़ और बरसात में फ्रेण्ड्स मीटिंग हाउस गये। यहाँ गांधीजी के स्वागतार्थ सभा थी। मैंने गांधीजी को सभा-गृह में प्रवेश करते देखा और मेरे मन पर फिर उनके सौन्दर्य की गहरी छाप पड़ी और इस बार तो मुझे उनके सामर्थ्य का भी आभास हुआ। वे व्यासपीठ पर चढ़ने के लिए कैसे कदम उठा रहे थे, कितनी शान्ति और स्वस्थता से उन्होंने लन्दन के उस दृश्य की तरफ नज़र डालकर देखा; और उन्होंने किस ख़ूबी से अपने प्रभाव द्वारा इन स्त्री-पुरुषों के चित्तों को जीत लिया, उसका तो वर्णन ही कौन कर सकता है? जिसे गांधीजी तथा इस समारंभ की महत्ता का ज़रा भी पता नहीं, ऐसा कोई दर्शक यदि वहाँ पहुँच जाता तो वास्तव में वह इस दृश्य को हँसी का पात्र ही समझता। यह भारतीय, जो नंगे पैर था, जिसकी टाँगें जाँघ तक खुली थीं, जिसने कच्छ पहना था और जिसने अपने शरीर पर खादी की एक मोटी चादर ओढ़ी थी, इस सभागृह में चढ़ा चला आ रहा था। वे बैठे, और बुद्ध की तरह शान्त और स्थिर हुए और इस दृश्य की हँसी—जो कुछ भी उस समय थी—वह एकाएक न जाने कहाँ चली गई। और उसमें भव्यता का संचार हो गया। उस सभा-गृह में उस समय जो भयमिश्रित आदर की भावना फैल गई थी उसे मैं ज़िन्दगी-भर नहीं भूल सकता। गांधीजी का अपने करोड़ों देश-भाइयों पर जो व्यापक प्रभाव है उसका रहस्य मैं आज पहली ही बार समझा। अगर उस समय वहाँ कोई बादशाह होता तो भी उसके प्रति हमें इतना आदर और श्रद्धा न होती। मुझे तुरन्त ही उस भावनाशील अंग्रेज़ पत्रकार मि० राबर्ट बरनेस का वचन स्मरण हो आया। उन्होंने कहा था,—"उन्हें देखते ही हमें बादशाही बातावरण का अनुभव होता है।" मुझे अपनी थोड़े ही सप्ताह पहले की एक बादशाह की मुलाक़ात का स्मरण हो आया। जो मनुष्य तीस से भी अधिक वर्ष पहले अपने ज़माने का सबसे अधिक प्रभावशाली राजा था, उसके साथ भी मैंने बातचीत की थी। उस राजा ने प्रभावोत्पादक पोशाक पहनी थी। उनके आस-पास दरबारी लोग थे, और वे स्वयं मोहक, सुन्दर और कद्दावर शरीरवाले थे, परन्तु उस राजा का वह सारा दबदबे-भरा दृश्य गांधीजी के इस बादशाही दृश्य के सामने कुछ भी नहीं था।

परन्तु, गांधीजो सिर्फ बादशाह जैसे ही नज़र आते हों इतना ही नहीं था ; बल्कि वे तो बोले भी शाही तरीक़े से। उस दोपहर उनके शब्द-सौम्यता और शान्त आवाज़ से एक ही स्वर में निकले थे। परन्तु ये शब्द जब हम लोगों के कानों तक पहुँचे तो बादशाही ऐलानों की तरह लगे—पर डरावने नहीं। उन्होंने तीन मुद्दे स्पष्ट किये—पहले अपना अधिकार। उन्होंने कहा कि वे विलायत को व्यक्तिगत रूप से नहीं, अपितु अपनी जनता के प्रतिनिधि के रूप में आये हैं। "मैं भारत के गूँगे, अधभूखे करोड़ों लोगों का प्रतिनिधि हूँ। इससे कोई ना नहीं कर सकता।" दूसरी बात उन्होंने कांग्रेस की ओर से दिये अपने अधिकार के विषय में कही। वे ब्रिटेन के साथ झगड़ा या मनमुटाव करने नहीं, अपितु कांग्रेस की शर्तों को ब्रिटेन के सामने रखने आये हैं। उन्होंने कहा,—"मैं कांग्रेस का प्रतिनिधि हूँ। उसने मुझे वकील बनाकर भेजा है। इसलिए मुझे अमुक मर्यादा में रहकर ही काम करना है। मुझे कांग्रेस ने जो आदेश दिया है, उसकी हद में रहकर ही मुझे कार्य करना है; मुझ पर जो विश्वास किया गया है, उसके प्रति मैं वफ़ादार रहूंगा ; इसलिए मैं मर्यादा की सीमा को नहीं लाँघ सकता।" आखिरी बात उन्होंने अपने ध्येय की कही। उस आदेश में क्या माँग की गई थी? गांधीजी ने कहा,—"स्वतंत्रता, कांग्रेस को इन गूँगे और अधभूखे करोड़ों लोगों के लिए पूर्ण और बिना शर्त की आज़ादी चाहिए।" इसमें न तो कुछ अस्पष्ट था और न कुछ गुप्त ही था "वे एक सत्ताधीश की तरह बोल रहे थे।" और उनके शब्दों में भविष्यवाणी की छाया साफ़ झलक रही थी।

यह शनिवारके दोपहर की बात है। उसके बाद पांच दिन मुझे लन्दन में रहने का सौभाग्य मिला। इस बीच में चार अलग-अलग प्रसंगों पर महात्माजी से मिला। पहली बार मिला वह दूसरे दिन रविवार सुबह। उस समय मैं उत्साह से भरा जल्दी-जल्दी, लन्दन के पूर्व-भाग में स्थित सेवाकेन्द्र की तरफ, जहाँ गांधीजी ने एक खास उद्देश्य से ठहरने का निश्चय किया था, पहुँच गया। गांधीजी अपने कमरे के बाहर बरामदे में बैठे थे। कमरा बहुत ही छोटा—पांच फीट चौड़ा और आठ फीट लम्बा था। उसमें पत्थर जड़े थे, और दीवारों पर किसी तरह का शृङ्गार

नहीं था। उसमें एक मेज़, एक कुर्सी और गांधीजी की ज़मीन पर सोने का एक पतला गद्दा, इतना ही साजो-सामान था। मीरा बहन उस कमरे की एक मात्र खिड़की को धो रही थीं। महात्माजी कुरसी पर बैठे थे और हलकी धूप में सूर्य-स्नान कर रहे थे। वे एक बड़े भारतीय नेता से बातचीत कर रहे थे। थोड़ी देर में बातचीत पूरी हुई, अतः मैं उनके पास पड़ी हुई एक कुरसी पर जाकर बैठ गया। हमने गोलमेज़ परिषद् की बात चलाई—क्या वह सफल होगी? नहीं, उसकी सफलता का कोई भी कारण गांधीजी के पास नहीं था। उनका मन उन्हें गवाही दे रहा था कि वह असफल हुए बिना रहेगी ही नहीं। वे बहुत ही सरलता से बोले,—"परन्तु विलायत आने के लिए मुझे ईश्वर की ओर से प्रेरणा हुई है। और इस प्रेरणा के पीछे कुछ-न-कुछ कारण तो होना ही चाहिए। इसीलिए मैंने अपने विचार को एक तरफ़ रख दिया है और मैं अन्त तक उसमें आशा और विश्वास रखूँगा।" लन्दन के कुछ पत्रों में उन पर निन्दा-भरे आक्षेप किये गये थे, उनकी बात मैंने निकाली और कहा—"मुझे आशा है कि आप इन चीजों से बेचैन नहीं हो रहे होंगे।" गांधीजी ने कहा,—"नहीं, इनसे मैं बेचैन तो नहीं हूँ, परन्तु इनसे मेरे हृदय में गहरी वेदना हो रही है। ज़रा आप इस बात को तो सोचिए कि मैंने अख़बार-नवीसों के साथ कितनी स्पष्ट और स्वतंत्रता से बात-चीत की है। मैंने उन्हें सभी बातें बताई हैं, इतना होते हुए भी वे लोग ऐसे निन्दा-वचन और सफेद झूठ बातें लिखते हैं। इन बातों को सामने देखकर मुझे बेहद दुःख होता है। फिर भी वे कुछ हँसकर आगे बढ़े—"परन्तु इससे मैं अपने मन को संताप की आग में नहीं जलाता। ऐसे लेखों से कुछ नुक़सान नहीं होगा। सत्य को हानि कौन पहुँचा सकता है?" इसके बाद मैंने दूसरे दिन आनेवाले सोमवार की—उनके मौन-दिवस—की बात निकाली और पूछा,—"आप परिषद् में हाज़िर रहेंगे?" उन्होंने अपने स्मित-हास्य को मुक्त हास्य में परिवर्तित करते हुए कहा,—"हाँ, मैं एक भी शब्द नहीं बोलूँगा, पर आप यह तो सोचें कि मुझे सुनने का कितना अच्छा अवसर प्राप्त होगा?" हमने अन्य कुछ विषयों पर बात की और उठते वक्त मैंने उनका समय लेने के लिए क्षमा-याचना की, क्योंकि वहाँ अन्य लोग प्रतीक्षा कर रहे थे।

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और कहा,—"आप जब-जब आ सकें, जरूर आवें। आपको शायद इन्तज़ार तो करना पड़ेगा। परन्तु आप जब तक लन्दन में रहें तब तक मैं आपसे मिलता रहना चाहता हूँ।" ये शब्द कहते समय उनकी मुख-मुद्रा पर अमिट स्मित था।

इसके बाद मैंने गांधीजी को रविवार की प्रार्थना में देखा। पड़ोस के कितने ही स्त्री-पुरुष प्रार्थना में भाग लेने आये हुए थे। महात्माजी कुरसी पर नहीं ज़मीन पर बैठे थे, वे खादी की चादर ओढ़े थे और उनके खुले पैरों पर कम्बल पड़ा हुआ था। वे बैठे-बैठे ही प्रार्थना के विषय में बोले,—"मैं ईश्वर को मानता हूँ, और इसीलिए प्रार्थना करता हूँ।" प्रार्थना से उन्हें क्या लाभ हुआ, यह भी हम लोगों को उन्होंने बताया और बोले,—"अगर मैं प्रार्थना न करता होता तो मैं कुछ भी न कर सकता।" आध्यात्मिक जीवन की इस अत्यन्त गहरी साधना का अनुभव अपनी शान्त भावना से हमारे आगे वर्णन करते हुए उनकी आवाज़ बहुत ही धीमी हो गई। मैं जिस अगली पंक्ति में बैठा था, उससे पिछली पक्तियों के लोगों को उनकी आवाज़ सुनाई दी होगी कि नहीं इसमें सन्देह है। महात्माजी अपनी आत्मा में अधिक डूबे, अधिक अन्तर्मुख होते हुए नज़र आ रहे थे। उनका प्रवचन आत्मा के अनुसन्धान की—शायद हमारी अपेक्षा जो बड़ी ईश्वरीय शक्ति है, उसके साथ हमारे सामने किये गये अनुसन्धान की क्रिया की ओर बढ़ता जाता था। परन्तु ऐसी नाजुक घड़ी में शब्दों की तो आवश्यकता ही नहीं होती। गांधीजी की उपस्थिति के कारण इस छोटे-से कमरे में जो वातावरण फैल रहा था उसकी मोहिनी में हम लोग ओत-प्रोत हो गये थे। यह आत्मोन्नति का क्षण कभी भुलाया नहीं जा सकता।

इसके बाद मैं गांधीजी से बुधवार तक नहीं मिला। उस साँझ को जब वे भोजन कर रहे थे तब मैं उनके पास जाकर बैठा। वह ज़मीन पर बिछे गद्दे पर बैठे थे। यथाशक्ति मैं उनके नज़दीक बैठा। उनके दायें हाथ में बकरी के दूध से भरा कटोरा था। गोद में एक मामूली थाली थी, (ऐसी थाली अकसर क़ैदियों के पास होती है,) उसमें मुट्ठीभर खजूर थे यही उनकी खुराक थी। गाँधीजी के मन्त्री

प्यारेलाल उनके पास बैठे थे, पर उन्होंने हमारी बातचीत में भाग नहीं लिया गोलमेज़ परिषद्, मेयर वाकर की मुलाक़ात की प्रार्थना, फिलस्तीन और यहूदी तथ उसका भारत के साथ सम्बन्ध, महात्माजी की अमेरिका-यात्रा आदि अनेक विषयें पर हम लोगों ने बातें कीं। आख़िर में मैंने उनसे विदा ली ; क्योंकि मैं शुक्रवार के यहाँ आनेवाला था, और उनसे पुनः मिलने की मुझे आशा नहीं थी। उन्होंने तुरंत ही कटोरा और थाली एक तरफ़ रख दी। मुझसे हाथ मिलाया और कहा,— "हम दुबारा अमेरिका या भारत में मिलेंगे। परन्तु यदि हम लोग कभी न मिलें तो भी हम लोग साथ ही रहेंगे।"

दूसरे दिन रात को देवदास गांधी ने मुझे ढूँढ़ निकाला और कहा कि गांधीजी मुझसे मिलना चाहते हैं। मुझे आश्चर्य हुआ। गांधीजी सेन्ट जेम्स के महल में थे जहाँ कि गोलमेज़ परिषद् हो रही थी। मैं जल्दी-जल्दी देवदास के साथ वहाँ पहुँचा गांधीजी समितियोंवाले कमरे में भोजन कर रहे थे। वह एक बड़ी गद्दीवाले तख़्ते पर बैठे थे। उन्होंने मुझे अपने पास बिठाया। अमेरिका से एक संदेश आया था उसके विषय में उन्हें मुझसे बातचीत करनी थी। हमने आधे घण्टे तक बातचीत की। इस बीच गांधीजी की मण्डली के आदमी कमरे में आ-जा रहे थे। बाद में ऐसी खबर मिली कि नौकर लोग महल को बन्द करने का इन्तज़ार कर रहे हैं इसलिए हम सब लोग उठे और मोटर में बैठ गये। गांधीजी ने मुझसे पूछा,— "आप किंग्सली हाल तक मेरे साथ मोटर में आ सकते हैं?" बेशक मैंने निमंत्रण स्वीकार किया और मैं उनके साथ मोटर में बैठा। हम लोग पूरब की तरफ़ शहर की मज़दूर-बस्ती की ओर मुड़े। हमारी मोटर घर के सामने आई तो हमने देखा कि दरवाज़ा बच्चों की भीड़ से रुका हुआ है। भारत से आये इस विचित्र आदमी के प्रति आसपास के बच्चों का कुतूहल बहुत ही जागृत हो गया था। सुबह-शाम गांधीजी को मोटर में आता-जाता देखने के लिए वे गली में इकट्ठे हो जाते थे। आज रात घर वापस आने में देर हो गई थी, तो भी ये बच्चे तो खड़े ही थे गांधीजी के मोटर से उतरते ही इन्होंने ख़ूब शोर मचाया! गांधीजी चले और उन्होंने हँसमुख चेहरे से बच्चों की ओर नज़र डाली। बच्चों ने फिर किलकारिये

मारीं, और गांधीजी का हाथ और उनकी शाल को छूने के लिए उन्हें घेर लिया। मैंने जल्दी से गांधीजी से विदा ली। और वे अपने कमरे में चले गये। जब मैं उस सकरी गली में होकर जा रहा था तब मुझे उन बच्चों की आवाज़ की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही थी। इसलिए मुझे गेलीली के उस पुरुष की याद आई जिसके बारे में उन्होंने कहा था कि—"छोटे बच्चों को मेरे पास आने दो। उन्हें इन्कार न करो ; क्योंकि स्वर्ग का राज तो इन्हीं लोगों से बना है।"

यह तो गांधीजी के साथ मेरी मुलाक़ात हुई। यह तो साधारण बात है, और इसमें मेरे अकेले के सिवा और किसी को रस भी नहीं आ सकता। पर इनमें अनेक तत्त्व ऐसे हैं जो मेरे निजी अनुभव की मर्यादा से भी ऊँचे महत्त्व के हैं। मैं एक ऐसे पुरुष से मिला हूँ जो एक पुरुष से बहुत कुछ अधिक हैं—वे एक महान ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और हमारे इस युग के लिए और भविष्य के सभी युगों के लिए महत्त्व के हैं। इनके गुणों के बारे में मेरे मन पर क्या कायम का असर पड़ा? जगत के जिस प्रसंग में ये गुण निर्णायकरूप में भाग ले रहे हैं, उस प्रसंग और उन गुणों के बीच का जो संबंध है, उसके बारे में मेरे क्या ख्यालात होंगे?

सबसे पहले तो मैं यही कहूँगा कि बरसों के अभ्यास और जाँच-पड़ताल के बाद मैंने गांधीजी के बारे में जो कल्पना की थी, वह उन्होंने सफल की, इतना ही नहीं, परन्तु कुछ-कुछ बातों में तो मैंने उन्हें अपनी कल्पना से बहुत आगे पाया। मैंने अपने मन में उनकी जैसी धारणा की थी वे वैसे ही निकले। सबसे पहली चीज़ उनकी मोहकता, यही मोहकता चाहे कोई उनका शत्रु हो या मित्र उस पर अपना असर डाले बिना रहती ही नहीं। इस पुरुष के तेज को जो देख लेता है, वह जिस प्रकार अप्रैल मास में बरफ पिघल जाती है, उसी प्रकार पिघले बिना नहीं रह सकता, ऐसा अनुभव तो उस देखनेवाले को होता ही है। परन्तु इसमें भी कोई शक नहीं कि उनकी मोहकता ऊपर-ऊपर की नहीं है। वह मोहकता आत्मा के अन्दर तक जाती है। सुवास और सौन्दर्य से भरा हुआ फूल जिस तरह धरती माता के अन्दर से पोषण-तत्त्व खींच लेता है, उसी तरह उनके ये गुण हैं। गांधीजी की बाहर की मोहकता उनके अन्तरतम की सौम्यता, कोमलता, माधुर्य और दयालुता की अखूट

निधि के कारण हैं। यह पुरुष प्रेम की भावना से प्रेरित है। यह प्रेम सारे संसार तक पहुँचता है। और छोटे-से-छोटे प्राणी को भी अपने बाहुपाश में बाँध लेता है। उनके हृदय में प्रेम एकदम उभर आता है, इसीलिए उनका विवेक अत्यन्त मधुर होता है। अपने साथियों के साथ शान्ति से रहनेवाली आत्मा की वे जीती-जागती मूर्त्ति हैं।

बेशक इन सब गुणों को गांधीजी में देखने की मैंने धारणा की थी। गांधीजी के हृदय से पैदा होनेवाली उनकी व्यक्तित्व की मोहकता तो उनके बारे में लिखे गये एक-एक वर्णन में पूरी तरह से व्याप्त है। परन्तु उनमें और भी बहुत-से गुण हैं जो इन लेखों में कहीं नहीं देखे जाते। उनके चारित्र्य और प्रभाव डालने के गुणों के बारे में तो मुझे बिल्कुल ही आशा नहीं थी, इसलिए इन गुणों को देखकर तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

इन गुणों में सबसे पहला गुण जो मैं यहाँ कहने जा रहा हूँ, वह है उनके शरीर की असाधारण सहन-शक्ति। वे तपस्वी हैं, इसलिए उनका शरीर कृश ज़रूर है, पर उनमें टक्कर झेलने और सहन करने की ग़ज़ब की ताकत है। मुझे डर था कि हिन्दुस्तान की गरमी से अभी आये उनके शरीर पर, जिस पर अधूरे ही वस्त्र हैं, इंग्लैण्ड की बरसातवाली आबहवा का ज़रूर कुछ खराब असर होगा। परन्तु उनके शरीर पर ज़रा भी इस हवा का खराब असर नहीं हुआ और वह अकेले ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें इस चीज़ की फिक्र नहीं थी। दूसरा गुण उनका घण्टों परिश्रम करने के बाद भी थकान का अनुभव न होना था। सुबह चार बजे वे एकान्त में प्रार्थना करने के लिए उठ जाते हैं। इसके बाद गलियों में तेज़ चाल से घूमने चले जाते हैं। इसके बाद सुबह का नास्ता, मन्त्रियों के साथ बात-चीत, और मुलाक़ातें शुरू होती हैं। दस बजे गोलमेज़ परिषद् में जाते हैं। वहाँ सारा दिन मुलाक़ात और चर्चाओं में जाता है। साँझ को सात बजे वे अपने मित्रों व कुटुम्बियों के साथ सान्ध्य प्रार्थना करते हैं। इसके बाद फिर मुलाक़ातें और सभा-समितियाँ चलती हैं, और ये रात को देर तक होती रहती हैं। इन सब कार्यों के बीच पत्र लिखना, कातना और इसके अलावा अन्य नियमित प्रवृत्तियाँ भी चलती ही रहती हैं। इस

प्रकार प्रतिदिन १९ से २० घण्टे तक का कार्य पूरा कर गांधीजी ज़िन्दा कैसे रह सकते हैं ? क्या सुबह-शाम की प्रार्थना के बल पर ? क्या उनकी सख्त खुराक जो उनके शरीर को टिकाये रखती है, पर उन्हें हानि नहीं पहुँचाती, उसकी बदौलत ? इन प्रश्नों का जवाब आप लोगों को जैसे देना हो दें, परन्तु हक़ीक़त यह है कि महात्माजी की शारीरिक ताकत अद्‌भुत है। एक अखबार के संवाददाता ने थोड़े दिन हुए लिखा था कि उनके चेहरे पर थकावट के चिह्न नज़र आ रहे थे। मैं यह सच नहीं मानता। जिस थकावट से हम लोगों में से अनेक थककर चूर-चूर हो जाते हैं, उस थकावट से गांधीजी ने कभी की मुक्ति पा ली है।

उनका एक और अद्‌भुत गुण उनकी मानसिक शक्ति है। मैंने इससे पहले अनेक बार खुल्लम-खुल्ला कहा है कि गांधीजी बुद्धि-क्षेत्र में असाधारण नहीं हैं। आत्मा की पवित्रता के साथ जो बुद्धि-बल के संयोग की कठिनता की कल्पना हमारे यहाँ परम्परा से चली आई है, उसके कारण भले ही मैं वैसा सोचने का लालच कर सकूँ। और जिस तरह की असाधारण साहित्यिक प्रतिभा टालस्टाय में थी, उसका गांधीजी में अभाव था, शायद इसलिए भी मैंने ऐसा सोचा हो। परन्तु अब तो मैं यह अच्छी तरह से जान गया हूँ कि गांधीजी में भी टालस्टाय की तरह ही असाधारण बुद्धि है, भले ही वह बुद्धि बड़ी-बड़ी सर्जनात्मक कल्पनाओं में ही क्यों न प्रकट होती हो। वस्तुतः मन की स्पष्टता, विचार की पवित्रता और किसी भी प्रश्न-सम्बन्धी हक़ीक़तों को पूरी तौर पर काबू कर लेने की ताकत, आदि गुण मैंने जैसे गांधीजी में देखे हैं, वैसे शायद ही किसी में देखे हों। भारत और ब्रिटेन, तथा अन्य अनेक सर्वश्रेष्ठ महत्त्व के विषयों का ज्ञान भी उनके पास भरपूर है। अपने विचार प्रकट करने में तथा अपनी नीति को निर्धारित करने में वे इस ज्ञान का जिस तरह उपयोग करते हैं वह स्पृहणीय चीज़ है। आम-सभा में उन्होंने मज़दूर-पक्ष के सामने भाषण दिया। भाषण के बाद इन मित्र-भाववाले जिज्ञासुओं ने दो घण्टे तक निर्दयता से उन पर प्रश्नों की बौछार की। वह दृश्य ठीक वैसा ही था जैसे कि किसी बारह सिंगे पर कुत्ते आक्रमण कर रहे हों। ऐसा होते हुए भी गांधीजी की जीभ एकबार भी नहीं अटकी। फिर निरुत्तर होने की तो बात ही क्या ? वे अकेले

ही इन सबके लिए काफ़ी थे। और आखिर में इस बुद्धि-बल की लड़ाई में गांधीजी की विजय हुई और विचक्षण अंग्रेजों ने यह स्वीकार कर इतना हर्षनाद किया कि वह चारों दिशाओं में फैल गया। इसलिए दोस्तो, आप लोग भ्रम में न पड़ें! महात्माजी आध्यात्मिक दृष्टि से जितने प्रभुपरायण हैं उतने ही वे बुद्धि-बल में समर्थ हैं। हिन्दुस्तान में अपने नेतृत्व के बारे में तो वे अपना सानी नहीं रखते।

उनका एक और गुण देखकर मुझे आश्चर्य हुआ और अब भी है। उस गुण का वर्णन मैं नहीं कर सकता। गांधीजी के स्वभाव में अमुक कठोरता और निश्चलता भी है, यहाँ मैं उसी की बात कर रहा हूं। हम लोग उसे कठोरता कह सकते हैं—पर गांधीजी के मन में जो सौम्यता वास करती है, उसके सामने तो कठोरता का कोई मेल ही नहीं खाता। मेरे मन में उनके जिन गुणों ने घर कर लिया, उनमें विचारों की सरलता, श्रद्धा की कठोरता, किये जानेवाले काम के लिए एक-निष्ठा, आदि हैं। अपनी एक-निष्ठा में तो वे जहाज़ के दाण्ड के समान हैं जो उसे ठीक-ठीक दिशा में ले जाता है। उनके इस गुण को तो मैंने उनके पहले भाषण में ही जो उन्होंने लन्दन में अपनी स्वागत-सभा में दिया था, जान लिया था। यह भाषण शान्त आवाज़ में दिया गया था; तो भी इसके जैसा सभी दृष्टियों से सम्पूर्ण भाषण आज तक मैंने नहीं सुना। यही गुण उनके गोलमेज़ परिषद् के पहले भाषण में भी नज़र आता है। इस भाषण में उन्होंने राजा के अमलदारों से कहा,—"एक समय ऐसा था जब मैं स्वयं ब्रिटिश जनता होने में और कहे जाने में अभिमान महसूस करता था। लेकिन आज अनेक वर्षों से मैंने अपने को ब्रिटिश-जनता कहना छोड़ दिया है। आज प्रजा की अपेक्षा मैं अपने को सरकार का विद्रोही कहलना अधिक पसन्द करूँगा।" इसी परिषद् में उन्होंने जो दूसरा भाषण दिया था, उसमें भी इन गुणों का स्वस्थ और शान्त प्रदर्शन स्पष्ट था। उस समय उन्होंने मेज़ के आसपास नज़र डाली और धीमी आवाज़ से कहा,—"हमें जिस भारतीय जनता का प्रतिनिधि होना चाहिए, वास्तव में हम उसके प्रतिनिधि नहीं हैं, अपितु सरकार द्वारा नामज़द किये गये हैं।" उनके इस गुण का सबसे अच्छा उदाहरण तो लकाशायर की उनकी नाटक की-सी एक मुलाक़ात में मालूम हुआ। लकाशायर के भूखे और दुःखी स्त्री-

पुरुषों को देखकर उनके मन को बेहद दुःख हुआ। तो भी उन्होंने उन लोगों से कहा,—"आपके यहाँ तीस लाख मनुष्य बेकार हैं, परन्तु हमारे यहाँ तो लगभग तीस करोड़ आदमी वर्ष में छह मास बेकार रहते हैं···मैं तुम्हारा भला चाहता हूँ। परन्तु हिन्दुस्तान के करोड़ों कंगालों की क़ब्रों पर जीने की इच्छा तो आप लोग न करें।" गांधीजी में फ़ौलाद की-सी ताक़त है। वह शायद ही झुकें—पर सुलह की शर्तों के विषय में बातचीत करने के लिए वे अनेक बार झुके हैं परन्तु वे कभी टूट नहीं सकते, यानी निराशा की चोटों से घबरा नहीं सकते। उनकी आत्मारूपी तलवार जैसी चाहो वैसी मुड़ सकती है; परन्तु वह निर्दयता से प्रहार कर सत्य के मर्मस्थल तक पहुँच जाती है। इस विषय में गांधीजी ईसामसीह की तरह हैं। वे नम्र हैं पर 'भीषण नम्र' हैं।

आखिर में गांधीजी की विनोदवृत्ति, उनकी हँसी-दिल्लगी और उनके आनन्दी स्वभाव की बात कहूँ? उनके जैसा जल्दी और मुक्त-हास्य करनेवाला महापुरुष आज तक मैंने कोई नहीं देखा। सहज ही, परन्तु कारण के मिलते ही, उनका आनन्द एक बच्चे की तरह उभर आता है। इसी कारण उनकी हँसी में अद्भुत सामर्थ्य है। यह हँसी उन्हें एकाएक और बिना धारणा के नहीं आती, अपितु यह तो उनके स्वभाव में हमेशा की तरह कायम ही रहती है। पहले तो मुझे उनका इस तरह का आनन्द और मुक्त-हास्य देखकर असमञ्जस हो गया था। मुझे लगा,—"इस आदमी के सिर पर अपने देश का इतना बड़ा बोझा है। साम्राज्य के इतिहास का सबसे बड़ा विषम प्रसङ्ग इस क्षण इनके सामने है। संसार में करोड़ों लोग इनका एक-एक शब्द और एक-एक काम आतुरता से सुनते हैं और देखते हैं। तो भी ये किसी दिलचस्प या आश्चर्य-भरी बातों को सुनकर इतने आनन्द के नशे में कैसे चूर हो जाते होंगे?" इतनी अधिक महत्त्व की घटनाओं के घटित होने पर भी वे इतनी स्वतन्त्रता से हँस सकते हैं, यह आश्चर्यजनक नहीं तो और क्या? तो भी मैंने इसे समझने की कोशिश की। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि गांधीजी का हास्य एक द्वार है, जो सीधा उनकी आत्मा के गूढ़तम स्थान से खुलता है। और फिर मैंने समझा, यह पुरुष जो एक महात्मा है, वह क्यों न हँसे?

इस तरह गांधीजी संसारी जीवन की हर एक चिन्ता से मुक्त हैं। अन्य सांसारिक चिन्ताएँ, जिनसे और मनुष्य दबे रहते हैं, उनके आस-पास नहीं हैं। उन्हें सुबह के बाद अपने शाम के भोजन की चिन्ता नहीं है। न तो उन्हें अपने कपड़ों की चिन्ता है, और न अपने शृङ्गार की। वे पैसा तो अपने पास रखते ही नहीं हैं, फिर उन्हें उसके खोने की चिन्ता ही कहाँ? उनके पास अपनी सम्पत्ति नहीं है; इसलिए उन्हें कोई लूट नहीं सकता। दूसरे शब्दों में कहें तो पृथ्वी की नश्वर चीज़ों के संग्रह में जो चिन्ताएँ हैं, उनसे वे बिलकुल मुक्त हैं, "जहाँ जीव-जन्तु और और जंग चीज़ों को बरबाद कर देते हैं और जहाँ चोर सेंध मार कर धन चुरा लेते हैं, ऐसी पृथ्वी पर उन्होंने संपत्ति नहीं जमा की।" उनकी सम्पत्ति तो "स्वर्ग में संग्रहीत है, जहाँ न जीव-जन्तु उसे खराब कर सकते हैं, न जग लग सकता है और न जहाँ चोर ही सेंध लगा सकता है।" उनका मन स्वस्थ और हृदय मुक्त है।

परन्तु इससे भी ज़्यादा महत्त्व की एक चीज़ और है। महात्माजी ईश्वर पर पूरी-पूरी श्रद्धा रखते हैं। यह चीज़ हम जड़वादी पश्चिमवासियों को शायद अद्भुत लगे, परन्तु गांधीजी तो वास्तव में यही मानते हैं। उन्हें अपनी प्रार्थना में भगवान् के दर्शन होते हैं। उनका तो यह दृढ़ विश्वास है कि जो लोग ईश्वर को खोजते हैं, उन्हें ईश्वरीय इच्छा का स्पष्ट दर्शन होता है; और जो ईश्वर को चाहते हैं, उन्हें उसी की इच्छा के मुताबिक चलना होता है। गांधीजी की नज़रों में ईश्वर की इच्छा के मुताबिक चलना सबसे बड़ी चीज़ है। उसके परिणाम का विचार वे संतोष और विश्वासपूर्वक उस राजाधिराज पर छोड़ देते हैं। इन मामलों में गांधीजी अपने हिन्दू-शास्त्रों का श्रद्धापूर्वक अनुसरण करते हैं। क्योंकि भगवद्गीता में यह स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य का अधिकार सिर्फ कर्म करने में है। और उस कर्म का फल ईश्वर के हाथ में है। इसलिए गांधीजी कभी चिन्ता नहीं करते, परन्तु श्रद्धा रखते हैं। अनन्त काल पर विश्वास है, इसलिए वे वर्तमान काल में सुखी रह सकते हैं।

यह चीज़ हमें गांधीजी के सामर्थ्य की स्पष्ट ही झाँकी दिला देती है। लन्दन की फ्रेण्ड्स मीटिंग हाउस वाली स्वागत-सभा में मि० लारेन्स हाउसमेन ने कहा

था,—"आपको अपने देश में भी बहुत-से लोग नहीं जानते। आप इतने सत्यनिष्ठ हैं कि हममें से बहुत-से लोग उसे देखकर द्विविधा में पड़ जाते हैं।" वास्तव में ऐसे पुरुष के सामने हम क्या कर सकते हैं? वे यदि एक सामान्य पुरुष की तरह आवें तो उन्हें पहुँचा जा सकता है। यदि हम हाथ में तल्वार लें तो उससे भी ज़बरदस्त तल्वार हमें ज़मीनदोज़ कर देती है। अगर सेना का आसरा लें तो उससे भी बलवान् सेना शिकस्त दे देती है। आज की स्थिति में भी बहुत ही आश्चर्य होता है कि ब्रिटेन इस विद्रोही महात्मा गांधी को अपने लन्दन के टावरवाले क़ैदखाने में डालकर उस पर राजद्रोह का मुक़दमा क्यों नहीं चलाता। इसके मुकाबले में यह पुरुष तो लन्दन में खुले शरीर और निडरता से आता है। उनके पास के हथियारों में सिर्फ 'श्रद्धा की ढाल' और 'आत्मा की तल्वार' ही तो है। ऐसे आदमी को कैसे हराया जा सकता है? जिसके शरीर पर विश्व-नियमरूपी बख़्तर हो, उसे कैसे परास्त किया जा सकता है? "भगवान् कहता है, उसी तरह न तो इन्हें शारीरिक बल से हराया जा सकता है, और न शस्त्र-बल से। सिर्फ आत्मबल से हराया जा सकता है!" गांधीजी अमोघ हैं, अप्रतिहत हैं और उन्होंने बरसों से अपने विरोधियों पर विजय पा ली है। *

———

* सन् १९३१ में लन्दन की मुलाक़ात लेने के बाद अमेरिका में दिया गया भाषण।

परिशिष्ट २

गांधीजी का 'ऑफ़िस'

(नं० ८८ नाइट्सब्रिज, लन्दन)

एगेथा हेरीसन

सन् १९३१ सितम्बर मास से पहले बहुत कम लोगों ने इस घर की तरफ़ ध्यान दिया होगा। यह एक ही रात में एकदम मशहूर हो गया ; क्योंकि दूसरी गोलमेज़ परिषद् के समय महात्मा गांधी ने अपना कार्यालय इसी जगह रखा था। परिषद् के अन्य सदस्य तो मेफेर के आमोद-प्रमोद के सभी साधनों से परिपूर्ण होटल में ठहरे थे। परन्तु इस पुरुष ने लन्दन के पूर्वी भाग में जहाँ ग़रीब मज़दूर वर्ग रहता है, वहाँ अपने रहने के लिए किंग्सली हाल के निमंत्रण को स्वीकार किया था। परिषद् के अन्य सदस्यों को यह जगह बहुत दूर पड़ती थी, वो मुहल्ला शहर से लगभग छह मील दूर था। परिषद्-सम्बन्धी बातचीत रात-दिन चलती थी। इसलिए यह आवश्यक था कि गांधीजी किसी मध्यवर्ती स्थान में ठहरें। मित्रों ने उन्हें समझाया ; और उन्होंने सेण्ट जेम्स के महल से कुछ अधिक नज़दीक—नं० ८८ नाइट्सब्रिज को दिन के काम-काज के लिए अपना दफ्तर बनाना स्वीकार किया।

मैं नहीं समझती कि इस व्यवस्था से गांधीजी कभी ख़ुश हुए हों। उसमें सभी तरह की सहूलियतें थीं, यह वे मानते थे। परन्तु इस कारण जो खर्च हो रह था, उसकी तो वे रात-दिन ज़िक्र किया करते थे। नाइट्सब्रिज में रहने की क़ीमत तो चुकानी ही पड़ेगी। गांधीजी इस क़ीमत का अर्थ भारत में भूखी मरनेवाली प्रजा की ख़ुराक समझते थे। इसी घर की बात को लेकर गांधीजी और चार्ली एण्ड्रूज़, इन दो परम मित्रों में मतभेद हो गया था। मि० एण्ड्रूज़ समझते थे—और उनका

यह समझना स्वाभाविक ही था कि गांधीजी को अनेक महत्त्व के कार्य करने हैं, इसीलिए उनकी शक्ति और समय बचाने के हेतु जितना खर्च करना पड़े उतना खुले दिल से करना चाहिए। गांधीजी हमेशा खर्च की चिन्ता किया करते। उन्हें रात को बहुत कम सोना मिलता था, फिर भी वे ज़िद करके किंग्सली हाल अधिक रात बीतने पर भी लौट जाते थे। परन्तु दूसरे वक्त, जब परिषद् की बैठक न चलती हो तब वे नं० ८८ नाइट्सब्रिज में ही अपना समय बिताते थे।

थोड़े ही समय में यह घर ठसाठस भर गया। एण्ड्रूज़ के हिस्से में एक छोटा-सा कोने का कमरा आया। वे गांधीजी की मदद में अपना समय और शक्ति दोनों लगा देते थे। जब उन्हें थोड़ा-सा समय मिलता तब वे अपनी 'ह्वाट् आइ ओ ट्र क्राइस्ट' (मैं ईसा का कितना ऋणी हूँ) नामक किताब लिखने लगते थे। इन अत्यन्त गड़बड़ी के दिनों में उन्होंने मुझे अपनी उस किताब के अनेक अध्याय दुबारा लिखवाये थे। वे इस किताब की पाण्डुलिपि को लेकर अपने कमरे में जाते, वहाँ बैठते, उसे ध्यान से पढ़ते और फिर उसमें संशोधन करते थे। गांधीजी की विलायत-यात्रा की सफलता के लिए वे जी-तोड़ मेहनत करते थे।

दूसरी थी मिसेस चीसमैन। इन्होंने दक्षिण अफ्रिका में गांधीजी की मदद की थी। यहाँ भी वे अपना सारा काम छोड़कर गांधीजी को शार्टहैण्ड टाइपिस्ट के काम द्वारा मदद देने के लिए आ गई थीं। मिसेस चीसमैन हेनरी पोलक की बहन लगती हैं। पोलक ने गांधीजी को दक्षिण अफ्रिका में बहुत ही मदद दी थी और स्वयं जेल भी गये थे। श्रीमती पोलक द्वारा लिखी गई 'गांधीजी के जीवन-प्रसंग' नामक पुस्तक उनके दक्षिण अफ्रिका के ऐतिहासिक दिनों का अच्छा दिग्दर्शन कराती है, और यह किताब पढ़ने लायक भी है। लाहौरवाले डा० दत्त सपत्नीक यहीं ठहरे हुए थे और उनकी पत्नी ने सचमुच यहाँ गृहिणी का आसन ग्रहण किया था। हमारे एक और सुन्दर साथी वुडब्रुक के रहनेवाले होरेस एलेक्ज़ेण्डर थे। उन्होंने जिस मौन गुप्त वृत्ति से हमारी सेवा का कार्य किया, उसे तो हम लोगों के सिवा और जान ही कौन सकता है? इसके अलावा और भी अनेक लोग इस आफिस में आते-जाते रहते थे।

हमारे उस परिवार का वर्णन तो असंभव है, लेकिन उस नाटक के मुख्य पात्रों में से कुछ के बारे में थोड़ा-थोड़ा कहा जाय तो अनुचित न होगा। उन पात्रों में सबसे पहला नम्बर तो महात्मा गांधी का आता है।

इस पुरुष का सटीक मूल्यांकन करना कम-से-कम मेरे लिए तो मुश्किल ही है। क्योंकि आजकल इस अटपटी और कपटी दुनिया में जब सम्पूर्ण सत्यनिष्ठ और सरल-चित्तवाले मनुष्य का दर्शन होता है, तो उसके विषय में वर्णन करने के लिए बरबस ही हमारा मुँह सिल जाता है। ऐसे लोग सरकार का काम कितना कठिन कर देते हैं, यह मैं स्पष्ट समझ सकती हूँ, क्योंकि इनकी सत्यनिष्ठा और सरलता देखकर वे लोग असमंजस में पड़ जाते हैं। इसीलिए अनेक बार मैं यह भी सोचने लगती हूँ कि गांधीजी अपनी इन दोनों चीज़ों में सामने के पक्ष की मुसीबतों को देखकर थोड़ी ढील दें तो अच्छा हो। उनके साथ काम करना बहुत ही मुश्किल है, पर उनमें पूरी-पूरी मानवता तो है ही। इसलिए हमारे मन में उनके प्रति बहुत ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है। इतनी अधिक गड़बड़ी में भी वे अपना काम कर लेते हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है। वे बहुत ही कम अकेले रहते हैं। उन्हें अकेले देखने का एक ही प्रसंग मुझे मिला था। गोलमेज़ परिषद् के अन्तिम भाग में उसकी जो प्रसिद्ध बैठक हुई थी, उसमें प्रधान मन्त्री ने सरकारी नीति की घोषणा की थी, और गांधीजी ने जो उसका जवाब दिया था, उसमें भावी घटनाओं की भविष्य-वाणी थी। इसके बाद वे तुरन्त ही नं० ८८ के अपने कार्यालय पर आये और आग के सामने बैठकर कातने लगे। मैं उन्हें कमरे के दूसरे किनारे से देख रही थी। मैं मन-ही-मन सोचने लगी कि सारी पृथ्वी का भार अपने निर्बल कन्धों पर उठानेवाले उस ऐटलस की दन्तकथा के जैसी ही इनकी भी स्थिति है।

गांधीजी गुप्त मंत्रणा में विश्वास नहीं करते। अत्यन्त महत्व की बात चल रही हो तो भी आस-पास तरह-तरह के स्त्री-पुरुष तो बैठे ही रहते हैं। तार और पत्र इधर-उधर पड़े रहते हैं, क्योंकि गांधीजी मनुष्यों पर पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं। भारत जाने का समय आया, उस समय आखिरी वक़्त गांधीजी मुझसे पूछने लगे,—"आप इन दोनों देशों—भारत और ब्रिटेन—के आपसी समझौते के काम को

अपने हाथ में लेंगी ?" ये बातें जब शुरू हुई तब मैं, गांधीजी और होरेस एलेक्ज़ेण्डर तीन जने थे। परन्तु थोड़ी ही देर में अच्छी खासी भीड़ जमा हो गई। इन सब लोगों की उपस्थिति में ही मेरे काम और उसके लिए धन की व्यवस्था की भी बात चली, और मैं किस तरह रहती हूँ तथा मेरा कितना खर्च होता है, इसके बारे में सबके सामने ही गांधीजी ने मुझसे सवाल पूछे और मैंने उनका उत्तर भी दिया।

उनके उपवास के समय मुझे ऐसा महसूस हुआ कि अपने काम के लिए मुझे उनसे सलाह लेनी चाहिए। अतः मैंने उन्हें तार दिया। थोड़े ही घण्टों में उनका जवाब आया,—'आपकी कठिनाई मैं समझता हूँ। भगवान् आपका मार्ग-दर्शन करेंगे।"

इसके बाद आते हैं उनके मंत्री महादेव देसाई। दुनिया के लिए उनका परिचय आवश्यक है ; क्योंकि भारत की परिस्थिति में उनका स्थान बहुत ही महत्त्व का है, और वे गांधीजी के दाहिने हाथ हैं। इस समय वे गांधीजी के साथ यरवदा जेल में हैं। एक बार मैंने महादेव से पूछा,—"आप राष्ट्रीय आन्दोलन में किस तरह आए ?" वे बोले,—"बहुत समय हुआ जब श्री गोखले दक्षिण अफ्रिका होकर आये तब मैंने उनका भाषण सुना था। उसमें उन्होंने गांधीजी के बारे में बहुत-सी बातें कही थीं। गांधीजी की ताक़त के बारे में उन्होंने एक वाक्य कहा था, वह मेरे हृदय में आज भी घर किये हुए है। उन्होंने कहा था,—"यह पुरुष मिट्टी के ढेरों से वीर पैदा करता है।" ऐसी शक्तिवाले पुरुष के विषय में महादेव ने कुछ अधिक जानना चाहा। इसी का यह परिणाम हुआ कि आज गांधीजी जिन मुख्य आदमियों पर आधार रखते हैं, उनमें से एक महादेव भी हैं।

महादेव ने भारत जाने से पहले अपने छोटे पुत्र के लिए कुछ भेंट की वस्तुएँ खरीदने के लिए मेरी मदद चाही। साबरमती आश्रम में ली गई पिता-पुत्र की अपनी फोटो भी बताई। वह पाँच वर्ष का मोहक बालक था और उसकी नज़र देखनेवालों को मोह में डाल देती थी। नं० ८८ के पास ही हेरड्ज़ स्टोर है, वह बच्चों के खिलौनों के लिए मशहूर है। वहाँ की बहुत-सी चीज़ों को देखकर महादेव ख़ुश हुए, परन्तु जिस शोभा से खिलौनों की सजावट की हुई थी, उसे

देखकर हमें बेहद दुःख हुआ। मैं जानती थी कि एक धनो मित्र ने उन्हें अमुक रकम दी थी और कहा था कि बच्चे के लिए कोई खिलौना लेना। महादेव बोले, "दूसरे बच्चों को खाना तक नसीब नहीं होता, और मैं अपने बच्चे के लिए खिलौने कैसे खरीदूँ ?" इन वाक्यों को बोलते समय उनके चेहरे पर जो भाव थे, वे मैं कभी भूल नहीं सकती। मैं तुरन्त ही उन्हें वूलवर्थ की दूकान पर ले गई। वहाँ हमने बच्चे के लिए छह पेनी की रंग की डिब्बी और चित्र निकालने की एक कापी भी ली। मैं सोचती हूँ, महादेव के जेल जाने से पहले उसे वह डिब्बी और कापी मिली होगी या नहीं ? पैसे के व्यवहार का काम महादेव के हाथ में था। मैंने जिन-जिन संस्थाओं में कार्य किया था, उनमें कोई भी संस्था इतनी बारीकी से पैसे का हिसाब नहीं रखती थी।

अब देवदास गांधी सामने आते हैं। उनकी और उनके पिता की मुखाकृति में बहुत ही कम साम्य है। सिर्फ पिता का तेजस्वी हास्य ही इनमें आया है। इनमें मनुष्यों के मन जीत लेने की शक्ति भी है। यहाँ लोगों पर उन्होंने अच्छा प्रभाव डाला। क्योंकि वे हरेक के साथ मिलते-जुलते और बात करते थे और इसके अलावा राजनीति में भी इनकी बुद्धि बहुत ही गहराई तक जाती है। अन्य लोगों के साथ ये भी परिषद् में उपस्थित रहते तथा और भी बहुत-से काम करते थे। इस मण्डली के जाने के थोड़े दिनों बाद मैं नं० ८८ के पास के एक दुग्धालय में गई। वहाँ लोगों ने मुझसे बहुत ही प्रेम से देवदास की खबर पूछी। और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि वे जेल में हैं तो वे दुःखी हुए।

गांधीजी के एक और साथी श्री प्यारेलाल हैं। ये स्वभाव के सौम्य और चतुर हैं। पुस्तकों और संगीत के शौकीन हैं और स्वप्न-द्रष्टा भी हैं। उन्होंने भी गांधीजी के निकट आने के लिए त्याग किया है और जीवन-दान दिया है। श्री प्यारे-लाल और मैंने अनेक बार साथ-साथ काम किया है, इसीलिए हम लोग एक-दूसरे के निकट परिचय में भी आये। गांधीजी के अनुयायी को कितने कठोर नियमों का पालन करना पड़ता है, यह मैंने इन्हीं से सीखा। एक बार गांधीजी ने एक पत्र माँगा, वह मिलता ही नहीं था। जहाँ रोज़ हज़ारों पत्र आते हों, और उन्हें

सँभालनेवाले थोड़े मनुष्य हों, वहाँ एक-आध पत्र का खो जाना मामूली बात है। अनेक घण्टों की खोज के बाद मैंने कहा, –"अब छोड़िए न इस बला को।" प्यारेलाल बोले,—"ढूँढ़े बिना चारा नहीं। 'नहीं मिलता' ऐसा गांधीजी से कहा ही नहीं जा सकता।" और सचमुच दो दिन की खोज के बाद पत्र मिला। हमें काम से जब फ़ुरसत मिलती तब श्री प्यारेलाल मुझे भारत की, अपने कुटुम्ब और मित्रों की, कांग्रेस के आन्दोलन में भाग लेनेवाली अपनी वृद्धा माता की, डाक्टरी में पढ़नेवाली अपनी बहन की बातें बताते। बाद में मैंने अखबारों में पढ़ा कि उनकी माँ जेल गई हैं। उनकी बहन का एक पत्र मेरे पास आया था, उसमें आर्डिनेन्सों का लोगों के जीवन पर क्या असर हुआ, आदि बातों का ज़िक्र था और लिखा था,—"थोड़े दिनों बाद हमारे विचारों पर भी आर्डिनेन्स लगेगा।" और आज उनका यह वाक्य मुझे बार-बार याद आ रहा है, जो मैं कभी नहीं भूल सकती।

एक और भाई बरनार्ड आलुबिहारी थे। ये भाई इससे पहले विलायत में रह चुके हैं और आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में अध्ययन करते थे। उनके अनेक मित्र भी यहाँ हैं। नं० ८८ में इनका काम टेलीफोन-व्यवहार सँभालना था, और इस व्यवहार को चलाने की उनकी तरकीब अद्वितीय थी। टेलीफोन की घण्टी क्षण-क्षण बज उठती। कभी उस पर से हमें महत्त्वपूर्ण संदेश मिलते थे और किसी बार बेवक़ूफ़ी-भरी बातें। इसलिए टेलीफोन करनेवाले को कभी-कभी टालमटोल का उत्तर दिया जाना स्वाभाविक ही था। एक क्षण में ह्वाइट-हाल से कोई महत्वपूर्ण संदेशा मिलता तो दूसरे ही क्षण कोई अखबार-नवीस पूछ बैठता था "मि० गांधी सिर्फ कच्छ पहनकर ही सम्राट् से मिलनेवाले हैं, क्या यह सच है?" मैं पास बैठी-बैठी देख रही थी। बरनार्ड ने ऐसे प्रश्न पूछनेवाले को बहुत शान्ति और गम्भीरता से मजाक़-भरा जवाब दिया,—"नहीं, नहीं, गांधीजी तो रेखादार पतलून और काला कोट पहनकर जायँगे।" इसके बाद टेलीफोन का बन्द होना स्वाभाविक ही था। इसी प्रकार यदि किसी ऊँचे ओहदेवाले अफसर को मजाक का जवाब दिया जाता तो मुश्किल हो जाती। परन्तु इसमें तो कोई शक नहीं कि इस आकर्षक और होशियार नौजवान की कुशलता से हमारे इस कार्य का उत्साह

बढ़ता ही जाता था। भारत पहुँचने के थोड़े दिन बाद यह जवान भी पकड़ लिया गया।

आखिरी बारी है मीरा बहन की। वे एक अंग्रेज़ अफसर, नौ-सेना के बड़े अफसर, एडमिरल की पुत्री हैं। गांधीजी की शिष्या होने के हेतु ही उन्होंने सांसारिक जीवन त्यागा है। विलायत आने से पहले उनके बारे में अनेक बातें हो रही थीं। उनमें से कुछ एक बातें तो ठीक थीं और कुछ एक असंगत और अश्लील थीं। मैं इनसे मिलने के लिए बहुत उत्सुक थी। परन्तु मुझे तब बहुत ही आश्चर्य हुआ जब मैंने उन्हें किंग्सली हाल के गांधीजी के छोटे-से कमरे को झाड़ते देखा। मीरा बहन को इस रूप में देखना मेरे लिए एक अजीब कल्पना थी। थोड़ी ही देर में हम दोनों में दोस्ती हो गई, और इसके बाद के सप्ताहों में मेरा और उनका गाढ़ परिचय हो गया। एक दिन मैंने उनसे पूछा,—"आपको इस पुराने वातावरण में रहकर अफसोस या पश्चात्ताप नहीं होता?" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उनके चेहरे पर जो भाव थे, वे आज भी मेरे मन पर अंकित हैं। उन्होंने कहा,— "मैंने जब इस जीवन में पदार्पण किया, उस समय मुझे लगा कि अब मैं वास्तव में अपने घर पहुँची हूँ।" विलायत में अखबारनवीस इनका पीछा नहीं छोड़ते थे, इनकी इच्छा प्रकट में आने की क़तई नहीं थी और इस चीज़ को रोकने के लिए वे पूरा-पूरा प्रयत्न भी करती थीं। वे बहुत ही कम सभाओं में भाषण देतीं, परन्तु जहाँ बोलतीं वहाँ उनके भाषण का जनता पर गहरा असर पड़ता था। उनके सगे-सम्बन्धी जो उनसे मिलना चाहते थे, उन्हें नं० ८८ के कार्यालय में ही आना पड़ता था और जिस छोटी-सी कोठरी में मीरा बहन बैठकर गांधीजी के लिए खाना तैयार करती थीं उसमें बैठकर उनसे बातचीत करनी पड़ती थी। एक घटना मुझे विशेषतः याद आ रही है। लिसियम क्लब में परिषदों के सदस्यों का सत्कार करने के लिए एक समारंभ किया गया था। उसमें हम दोनों भी गई थीं। अनेक बार इस क्लब में बड़े-बड़े और प्रभावोत्पादक जलसे होते रहे हैं। पोशाक उतारनेवाले कमरे के नौकर को मीरा बहन ने अपनी सादी खद्दर की शाल दी। यह शाल अन्य स्त्रियों की मखमल और रुएँदार पोशाकों के साथ ही रखी जानेवाली थी। उसी

समय मीरा बहन ने कहा,—"आखिरी बार मैं जब इस क्लब में आई थी, उस समय तो मैं इसकी सदस्या थी।" इस महिला का वर्णन करते हुए मुझे यहाँ पर यही कहना उचित प्रतीत होता है कि इस महिला को तो वास्तव में अपना "घर" मिल गया है। अन्य किसी भी तरीके से इनका वर्णन नहीं हो सकता। इस समय वे बम्बई की जेल की अपनी दूसरी यात्रा का समय पूरा कर रही हैं।

गांधीजी की अल्प काया की रक्षा के हेतु सरकार ने जिन दो गुप्त पुलिस के अधिकारियों को नियुक्त किया था, उनका वर्णन किये बिना यह चित्र अधूरा ही रह जायगा। इस जोड़ी को सामान्यतः खास-खास राजाओं के पीछे घूमने के लिए नियुक्त किया जाता है। ये लोग तो हरेक मनुष्य के अवगुण देखने के आदी होते हैं। परन्तु अब इनका काम दूसरा ही हो गया। वे लोग स्नेह-पूर्वक गांधीजी को "नन्हा पुरुष" कहते थे। गांधीजी के सहवास से उनके मन में गांधीजी के प्रति प्रेम जागृत हो गया। अब वे गांधीजी को अपना मित्र समझने लग गये थे और उनकी हरेक तरह की सेवा करने को हमेशा तैयार रहते थे। हमारा काम जब बहुत बढ़ गया तब ये लोग स्वेच्छा से हमारी मदद करने लगे। गांधीजी के लन्दन छोड़ने से पहले एक उच्च अधिकारी ने उनसे पूछा,—"मैं आपकी और क्या सेवा कर सकता हूँ?" गांधीजी ने नम्रता से कहा,—"इन दो गुप्त पुलिस के आदमियों को मेरे साथ ब्रिंडिसी तक सफर करने की इजाज़त दीजिए।" अधिकारी ने पूछा,—"ऐसा क्यों?" गांधीजी ने कहा,—"ये लोग मेरे ही परिवार के हो गये हैं, इसलिए।" यह प्रार्थना स्वीकार की गई और गांधीजी ने जब तक यूरोप नहीं छोड़ा तब तक ये दोनों साथ रहे। ये दोनों आदमी आज भी जब अपना विचित्र काम करने जाते हैं, तो उनकी जेबों में भारत से गांधीजी द्वारा भेजी हुई घड़ियाँ तो रहती ही हैं। इन घड़ियों पर अंग्रेज़ी में लिखा है,—"मोहनदास गांधी की तरफ़ से सस्नेह भेंट।" गुप्त पुलिस के अधिकारियों को आज यदि अपने संस्मरण लिखने की स्वतंत्रता हो तो आज ये दोनों आदमी कितनी ही अजीब और आश्चर्य-भरी बातें गांधीजी के बारे में बता सकते हैं।

घर का काम करनेवाली जो स्त्रियाँ थीं; उनका भी ज़िक्र यहाँ आवश्यक है।

साधारण संयोगों में तो ये स्त्रियाँ दिन में अमुक घण्टे ही काम करती हैं। परन्तु हमारे यहाँ की स्त्रियाँ तो रात-दिन खुशी से काम करती थीं। दरवाज़े की घंटी निरन्तर बजती हो तो ये तुरन्त ही जाकर दरवाज़ा खोलतीं और दिन-रात किसी भी समय हमारे परिवार के लोगों को भोजन कराने के लिए तैयार रहतीं।

इन दिनों के संस्मरण गिने नहीं जा सकते। इनमें से अमुक संस्मरणों को विशेष महत्त्व देना भी उतना ही कठिन है। तो भी कुछ प्रसंग तो एकदम याद आ ही जाते हैं। सांध्य प्रार्थना के समय कमरा ठसाठस भर जाता। लोग इस महापुरुष के रहन-सहन के बारे में कुछ अधिक बातें जानने की उत्कण्ठा से आते थे। सुबह शीघ्र ही जब गांधीजी आते तब ऐसा महसूस होता था कि उनकी परछाईं जैसी कोई चीज़ उनके कमरे में प्रवेश कर रही है। इतने में वे तुरन्त ही मोटर से कूदकर और थोड़ी ही देर में अपने कमरे की आग के सामने आकर कातने लगते। कमरे के हरेक कोने में मशहूर शिल्पी और चित्रकार उनकी मूर्ति बनाने के लिए बैठे रहते थे। तुरन्त ही जवाब देनेवाले पत्र और तार आस-पास अस्त-व्यस्त पड़े रहते थे। परिषद् के सदस्य परिषद् शुरू होने से पहले उनके अभिप्राय जानने के लिए ज़मीन पर बैठे रहते थे। दुनिया-भर से आये हुए लोग उनका एक ही शब्द सुनने को आतुर रहते। चार्ली एण्ड्रूज़ और होरेस एलेक्ज़ेंडर इन सबके बीच बैठे काम करते रहते थे। मिसेस चीसमैन कागज़-पेन्सिल लेकर इस इन्तज़ार में धीरज से बैठी रहती थीं कि गांधीजी कब उन्हें खास-खास पत्र लिखाते हैं। और इन सबके बीचों-बीच गांधीजी की शान्त अविकल मूर्ति विराजमान रहती थी। परिषद् का समय होते ही वे तुरन्त उठकर बाहर खड़ी हुई मोटर में जा बैठते। गुप्त पुलिस के अधिकारी हाँफते-हाँफते उनके पीछे जाकर मोटर में बैठते और साथ-ही-साथ गांधीजी का कोई सहायक उनका ऐतिहासिक चरखा और भोजन का टोकरा लेकर दौड़ता-दौड़ता मोटर के पास पहुँच जाता।

एक और प्रसंग मेरी स्मृति में अभी तक जमा हुआ है। शाम का समय था। अमेरिका के शिकागो शहर से बिशप फिशिर का फोन आया। वे गांधीजी को अमेरिका आने का निमत्रण देना चाहते थे। गांधीजी ने आग्रह से स्वयं फोन लेकर

उनसे बात की। मैं और एण्ड्रूज़ पास ही खड़े रहे कि कहीं ऐसा न हो कि गांधीजी को फोन ठीक-ठीक सुनाई न पड़े। क्योंकि वे बहुत ही कम फोन पर बात करते हैं। इस बातचीत को जानने के लिए अखबारों के संवाददाता बाहर चक्कर लगा रहे थे। परन्तु गांधीजी ने इस खर्चीली बातचीत को तुरन्त ही निपटा दिया। इस जगह भी उन्हें यही विचार हुआ होगा कि इस फोन की बातचीत के पीछे कितना ज्यादा खर्च होगा, और वही खर्च ग़रीबों को दिया जाय तो उनका कितना लाभ हो सकता है।

अनेक विनोदी घटनाएँ भी हुईं। एक दिन मीरा बहन ने देखा कि गांधीजी के लिए खास सँभालकर रखी हुई सेलेड की भाजी ग़ायब है। वे ग़बन करनेवाले की खोज करने लगीं और आखिर में सबने हँसते-हँसते चार्ली एण्ड्रूज़ को इसके लिए गुनहगार ठहराया।

वे दिन अवर्णनीय हैं। सख़्त काम की वजह से ज़रा भी समय खाली न था, फिर भी लोग पानी की लहरों की तरह आते-जाते ही रहते थे। ऐसी हालत में यदि हमने मुलाक़ातियों के हस्ताक्षर के लिए एक नोटबुक रखी होती तो कितना अच्छा होता। अगर ऐसा होता तो हम यह आसानी से जान सकते कि उस समय कितने राजनीतिज्ञ, कितने धार्मिक-नेता तथा अन्य कितने विचारक स्त्री-पुरुष वहाँ इस महा-पुरुष से मिलने आते थे। इस पुरुष के इस देश में आकर रहने के मर्म को क्या इस देश के लोग समझे होंगे? अखबारों में बड़े-बड़े अक्षरों के साथ रोज़ खबरें छपती थीं कि आज गांधीजी चार्ली चैपलिन से मिले, आज बरनार्ड शा से मिले और आज उन्होंने कच्छ पहनकर बकिंगहम के महलों में जाने का भी साहस किया। इतना होते हुए भी उन्होंने गोलमेज़ परिषद् में जिस अमंगल भविष्य की आगाही की थी उसकी ओर लोगों का बहुत कम ध्यान गया। आज हमें अनुभव हो रहा है कि उनके उस समय के वचन कितने सच्चे और स्थायी थे।

इस समय लन्दन में तीसरी गोलमेज़ परिषद् हो रही है। यह लेख जब तक पाठकों के सामने आयेगा, तब तक इस परिषद् का फैसला भी हो गया होगा। परन्तु इस समय जब यहाँ भारत के बारे में चर्चे चल रहे हैं तब उस भारतीय नाटक का नायक तो बिना मुक़द्दमा चलाये ही यरवदा जेल में "माननीय सम्राट् की जब तक

इच्छा हो तब तक" बन्द है। जिस तरह किसी ने कहा है कि "गांधीजी ब्रिटिश जेलों के अन्दर बैठे हुए भी भारत पर अपना राज चला रहे हैं" यह बिलकुल सही है।

आज से दस या बीस वर्ष बाद नं०८८ नाइट्सब्रिज के दरवाजे पर शायद एक ऐसा तख्ता लगा होगा, जिस पर लिखा होगा, "१९३१ में जब गांधीजी गोलमेज़ परिषद् के लिए यहाँ आये थे तब वे यहाँ ठहरे थे।"[१] आज जब कभी हम लोग इस घर के सामने से गुज़रते हैं, तो हमें जाज्वल्यमान अक्षरों में यह सवाल लिखा हुआ नज़र आता है, "आप लोगों ने गांधीजी का क्या किया?"[२]

१—युद्ध के दिनों में यह घर नष्ट हो गया है।

२—शिकागो के 'क्रिश्चियन सेंचरी' नामक साप्ताहिक पत्र में सन् १९३२ में यह लेख छपा था। लेखिका की अनुमति से यहाँ उसका अनुवाद दिया गया है।

इंग्लिश चैनल पार कर श्रीमती नायडू और सर पट्टणीके साथ
फाक्सटनके बन्दरगाहमें गांधीजीका आगमन

डारवेन के मेयरसाहब गांधीजी और मीरांबहन

कैण्टरबरीके डीनसे गांधीजीकी भेंट साथमें श्रीमती मीरां बेन भी हैं

कस्तुरबा और गांधीजी

गांधीजी बैरिस्टर की पोशाकमें